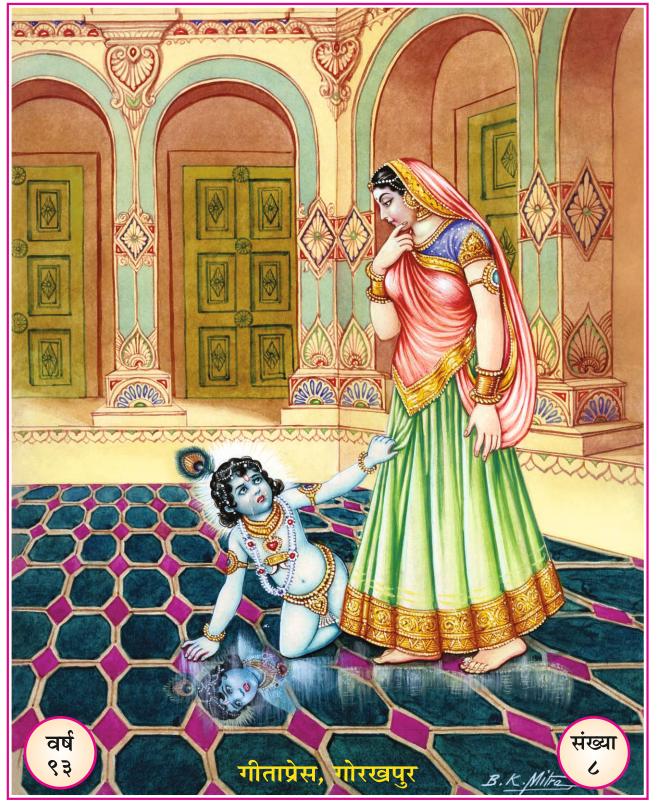
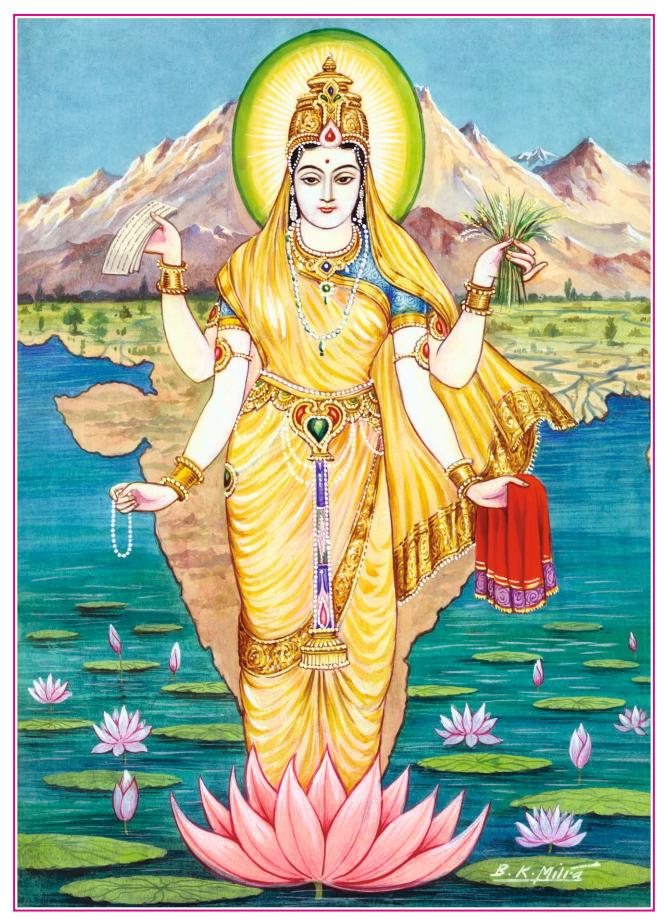
# ancel UI



मूल्य १० रुपये





भारतमाता

## नवीन प्रकाशन—छपकर तैयार

पंचांग-पूजन-पद्धित [ कुशकण्डिका-होमिविधिसिहत ] (कोड 2228)—प्रस्तुत पुस्तकमें पंचांग-पूजन कर्मके अन्तर्गत मुख्यरूपसे कलशस्थापन, पुण्याहवाचन, रक्षाविधान, नवग्रहपूजन तथा नान्दीमुख श्राद्ध—इन पाँच प्रधान कर्मोंका विवेचन किया गया है। इसमें मन्त्रभाग संस्कृतमें हैं और निर्देश हिन्दीमें हैं। इसमें वैदिक मन्त्रोंके साथ-साथ पौराणिक मन्त्र भी दिये गये हैं। इस पुस्तकमें पिरिशिष्टके अन्तर्गत सुविधाकी दृष्टिसे कुशकण्डिकासहित होमविधि इत्यादि विषयोंका भी समावेश किया गया है।

<mark>आशा है, यह पुस्तक विद्वज्जनों</mark>के लिये अत्यन्त उपयोगी सिद्ध <mark>होगी। मूल्य ₹२०</mark>

देवीभागवत-कथासार [ श्रीमदेवीभागवत—एक सिंहावलोकन ] ( कोड 2226 )—बारह स्कन्धोंमें विभक्त श्रीमदेवीभागवतमें मुख्यरूपसे भगवतीकी लीलाकथाओंका प्रतिपादन किया गया है। कल्याणके विशेषांकके रूपमें विगत दो वर्षोंमें प्रकाशित श्रीमदेवीभागवत—एक सिंहावलोकनमें श्रीमदेवीभागवतके कथासारका निरूपण किया गया है। उसी कथासारको प्रस्तुत पुस्तकमें प्रकाशित किया गया है।मूल्य ₹२०

<mark>लिङ्गमहापुराण [ गुजराती, ग्रन्थाकार ] ( कोड 2227 )—</mark> गुजराती भाषामें पहली बार प्रकाशित इस महापुराणमें <mark>शैवदर्शन, पाशुपतयोग, लिङ्गार्चन, लिङ्ग-माहात्म्य एवं शिव भक्तोंकी कथाओंका सरस वर्णन है। मूल्य ₹२४०</mark>

मू० ₹	मू० ₹	मू० ₹
2209 श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-मूल (तेलुगु) २८०	2229 श्रीदुर्गासप्तशती (नेपाली) ३५	2232 नित्य स्तुति और
2230 श्रीललितासहस्त्रनामस्तोत्रमु	2231 एक संतकी वसीयत ( ,, ) ४	प्रार्थना (नेपाली) ५
(भावार्थमुलु) (तेलुगु) 🔻 🔾 ३०		2233 सच्चा गुरु कौन? (,,) ५
कर्मकाण्डकी प्रमुख पुस्तकें		
91	गनगण्डनम प्रमुख पुरा	

#### [ १४ सितम्बरसे पितृपक्ष ( महालय ) आरम्भ हो रहा है।]

नित्यकर्म-पूजाप्रकाश [ सजिल्द ] ( कोड 592 )—इस पुस्तकमें प्रात:कालीन भगवत्स्मरणसे लेकर स्नान, ध्यान, संध्या, जप, तर्पण, बलिवैश्वदेव, देव-पूजन, देव-स्तुति, विशिष्ट पूजन-पद्धित, पञ्चदेव-पूजन, पार्थिव-पूजन, शालग्राम-महालक्ष्मी-पूजनकी विधि है। मूल्य ₹७० गुजराती, तेलुगु, नेपाली भी।

अन्त्यकर्म-श्राद्धप्रकाश [ ग्रन्थाकार ] ( कोड 1593 )— इस ग्रन्थमें मूल ग्रन्थों तथा निबन्ध-ग्रन्थोंको आधार बनाकर श्राद्ध-सम्बन्धी सभी कृत्योंका साङ्गोपाङ्ग निरूपण किया गया है। मूल्य ₹१४५

गरुडपुराण-सारोद्धार (कोड 1416)—श्राद्ध और प्रेतकार्यके अवसरोंपर विशेषरूपसे इसके श्रवणका विधान है। यह कर्मकाण्डी ब्राह्मणों एवं सर्व सामान्यके लिये भी अत्यन्त उपयोगी है। मूल्य ₹४०

गया-श्राद्ध-पद्धित (कोड 1809)—शास्त्रोंमें पितरोंके निमित्त गया-यात्रा और गया-श्राद्धकी विशेष महिमा बतायी गयी है। आश्विन मासमें गया-यात्राकी परम्परा है। प्रस्तुत पुस्तकमें गया-माहात्म्य, यात्राकी प्रक्रिया, श्राद्धका महत्त्व तथा श्राद्धकी प्रक्रियाको सांगोपांग ढंगसे प्रस्तुत किया गया है। मृल्य ₹३५

त्रिपिण्डी श्राद्ध (कोड 1928)—अपने कुल या अपनेसे सम्बद्ध अन्य कुलमें उत्पन्न किसी जीवके प्रेतयोनि प्राप्त होनेपर उसके द्वारा संतानप्राप्तिमें बाधा या अन्यान्य अनिष्टोंकी निवृत्तिके लिये किया जानेवाला श्राद्ध त्रिपिण्डी श्राद्ध है। इस पुस्तकमें त्रिपिण्डी श्राद्धका सविधि वर्णन किया गया है। मूल्य ₹१६

जीवच्छ्रान्द्र-पद्धित (कोड 1895)—प्रस्तुत पुस्तकमें जीवित श्राद्धकी शास्त्रीय व्यवस्था दी गयी है, जिसके माध्यमसे व्यक्ति अपने जीवित रहते ही मरणोत्तर क्रियाका सही सम्पादन करके कर्म-बन्धनसे मुक्त हो सके। मूल्य ₹७०

#### LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT

#### LICENCE No. WPP/GR-03/2017-2019

शारदीय 'नवरात्र' २९ सितम्बरसे प्रारम्भ हो रहा है	कोड	पुस्तक-नाम	मूल्य ₹
श्रीदुर्गासप्तशतीके उपलब्ध संस्करण—मँगानेमें शीघ्रता करें।	1567	मूल, मोटा टाइप (बेड़िआ)	40
		(तेलुगु, कन्नड़, मलयालम भी)	
श्रीदुर्गासप्तशती हिन्दू–धर्मका सर्वमान्य ग्रन्थ है। इसमें भगवतीकी	876	<b>मूल,</b> गुटका	१५
कृपाके सुन्दर इतिहासके साथ अनेक गूढ़ रहस्य भरे हैं। सकाम भक्त	1346	सानुवाद, मोटा टाइप	४०
इस ग्रन्थका श्रद्धापूर्वक पाठ करके कामनासिद्धि तथा निष्काम भक्त	1281	सानुवाद (वि॰ सं॰)	५५
90	118	सानुवाद, सामान्य टाइप	
दुर्लभ मोक्ष प्राप्त करते हैं। इस पुस्तकमें पाठ करनेकी प्रामाणिक		(गुजराती, बँगला, ओड़िआ,	
विधि, कवच, अर्गला, कीलक, वैदिक-तान्त्रिक रात्रिसूक्त, देव्यथर्वशीर्ष,		तेलुगु भी)	३५
नवार्णविधि, मूल पाठ, दुर्गाष्टोत्तरशतनामस्तोत्र, श्रीदुर्गामानसपूजा,	489	सानुवाद, सजिल्द, गुजराती भी	40
तीनों रहस्य, क्षमा-प्रार्थना, सिद्धकुञ्जिकास्तोत्र, पाठके विभिन्न प्रयोग	866	केवल हिन्दी	२२
तथा आरती दी गयी है। विभिन्न दृष्टियोंसे यह पुस्तक सबके लिये	1161	'' '' मोटा टाइप,सजिल्द	५५
	दर्गाः	वालीसा एवं विन्ध्येश्व	ारी-
उपयोगी है।	_	ोसा (अनेक आकार-प्रकारम	

श्रीमद्देवीभागवतमहापुराण [ सटीक ] ( कोड 1897, 1898 ) ग्रन्थाकार — श्रीमद्देवीभागवतमहापुराण भगवतीकी विस्तृत महिमाके परिचायक होनेके साथ-साथ एक आशीर्वादात्मक ग्रन्थ है। इसके पारायण और अनुष्ठानसे लौकिक, पारलौकिक लाभके साथ भगवतीकी कृपा प्राप्त होती है। इसे दो खण्डोंमें सरल हिन्दी व्याख्यासहित प्रकाशित किया गया है। दोनों खण्डोंका मूल्य ₹४८०, ( कोड 1133 ) सं० केवल हिन्दी मोटा टाइप मूल्य ₹२६५, ( कोड 1770 ) मूलमात्रम्, मूल्य ₹१८५

शक्ति-अङ्क (कोड 41) ग्रन्थाकार—इसमें परब्रह्म परमात्माके आद्याशक्ति-स्वरूपका तात्त्विक विवेचन, महादेवीकी लीला-कथाएँ एवं सुप्रसिद्ध शाक्त भक्तों और साधकोंके प्रेरणादायी जीवन-चिरत्र तथा उनकी उपासनापद्धतिपर उत्कृष्ट उपयोगी सामग्री संगृहीत है। मूल्य ₹२००

महाभागवत (देवीपुराण) [ सटीक, सचित्र, सजिल्द ] (कोड 1610) ग्रन्थाकार—इस पुराणमें मुख्य रूपसे भगवती महाशक्तिके माहात्म्य एवं उनके विभिन्न चिरत्रोंका विस्तृत वर्णन है। इसमें मूल प्रकृति भगवतीके गङ्गा, पार्वती, लक्ष्मी, सरस्वती, तुलसी आदि रूपोंमें विवर्तित होनेके मनोरम आख्यान हैं। मूल्य ₹१३०

देवीस्तोत्ररत्नाकर (कोड 1774) पुस्तकाकार—इस पुस्तकमें भगवती महाशक्तिके उपासकोंके लिये देवीके अनेक स्वरूपोंके उपासनार्थ चुने हुए विभिन्न स्तोत्रोंका अनुपम संकलन किया गया है। मूल्य ₹४० शिक्तपीठ-दर्शन (कोड 2003)—प्रस्तुत पुस्तकमें भगवतीके ५१ शिक्तपीठोंके इतिहास और रहस्यका विस्तत वर्णन है। मल्य ₹२०

२५वाँ दिल्ली पुस्तक-मेला सन् २०१९—इस वर्ष भी प्रगति मैदान, नयी दिल्लीमें (दिनाङ्क ११ सितम्बरसे १५ सितम्बर २०१९ तक) आयोजित दिल्ली पुस्तक-मेलामें गीताप्रेसद्वारा एक भव्य पुस्तक-स्टॉल लगाकर विभिन्न भारतीय भाषाओंमें प्रकाशित अपने प्रकाशनोंके प्रदर्शन एवं बिक्रीकी व्यवस्था करनेका प्रयास है।

e-mail : booksales@gitapress.org—थोक पुस्तकोंसे सम्बन्धित सन्देश भेजें। Gita Press web : gitapress.org—सूची-पत्र एवं पुस्तकोंका विवरण पढ़ें। gitapressbookshop.in से गीताप्रेसकी खुदरा पुस्तकें Online कूरियरसे/डाकसे मँगवायें। ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

यज्जापः सकृदेव गोकुलपतेराकर्षकस्तत्क्षणाद्यत्र प्रेमवतां समस्तपुरुषार्थेषु स्फुरेत्तुच्छता।

यन्नामाङ्कितमन्त्रजापनपरः प्रीत्या स्वयं माधवः श्रीकृष्णोऽपि तद्द्भतं स्फुरत् मे राधेति वर्णद्वयम्।।

संख्या

पूर्ण संख्या १११३

भारतभूमिभागे।

पुरुषा:

सुरत्वात्॥

परमात्मभूते।

भारतभूमिकी महिमा

गोरखपुर, सौर भाद्रपद, वि० सं० २०७६, श्रीकृष्ण-सं० ५२४५, अगस्त २०१९ ई०

गीतकानि धन्यास्तु ते किल गायन्ति देवा: स्वर्गापवर्गास्पदमार्गभृते भवन्ति भूय: कर्माण्यसङ्खल्पिततत्फलानि विष्णौ संन्यस्य

वर्ष

कर्ममहीमनन्ते तस्मिल्लयं ये प्रयान्ति॥ अवाप्य त्वमलाः विलीने कर्मणि जानीम स्वर्गप्रदे देहबन्धम्। नैतत्क्व वयं

ते ये भारते नेन्द्रियविप्रहीनाः॥ खल् मनुष्या धन्या: देवगण भी निरन्तर यही गान करते हैं कि 'जिन्होंने स्वर्ग और अपवर्गके मार्गभूत भारतवर्षमें जन्म लिया है, वे पुरुष हम देवताओंकी अपेक्षा भी अधिक धन्य (बड़भागी) हैं। जो लोग इस कर्मभूमिमें जन्म लेकर अपने फलाकांक्षासे रहित कर्मोंको परमात्मस्वरूप श्रीविष्णुभगवान्को अर्पण करनेसे निर्मल (पापपुण्यसे रहित) होकर उन अनन्तमें ही

लीन हो जाते हैं, [वे धन्य हैं!]। पता नहीं, अपने स्वर्गप्रदकर्मींका क्षय होनेपर हम कहाँ जन्म ग्रहण करेंगे! धन्य तो वे ही मनुष्य हैं, जो भारतभूमिमें उत्पन्न होकर इन्द्रियोंकी शक्तिसे हीन नहीं हुए हैं।' [श्रीविष्णुपुराण ]

हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ राम हरे राम राम राम (संस्करण २,००,०००) कल्याण, सौर भाद्रपद, वि० सं० २०७६, श्रीकृष्ण-सं० ५२४५, अगस्त २०१९ ई० विषय-सूची पृष्ठ-संख्या पुष्ठ-संख्या विषय विषय १- भारतभिमको महिमा ..... १५- वेदोंके महावाक्य (डॉ० श्री के०डी० शर्मा) ...... २५ २– कल्याण ५ १६– जरूरतमन्दकी मदद...... २८ ३- लीलामयका रुदन-नाट्य [ आवरणचित्र-परिचय] ...... ६ १७- संत-वचनामृत (वृन्दावनके गोलोकवासी सन्त पृज्य श्रीगणेशदासजी भक्तमालीके उपदेशपरक पत्रोंसे) ...... २९ ४- विवाहित स्त्रियोंके कर्तव्य १८- प्रेम ही सर्वोपरि तत्त्व है (आचार्य श्रीगोविन्दरामजी शर्मा) ...... ३० (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका).....७ १९- बच्चोंके संस्कारपर बडोंके व्यवहारका प्रभाव ५- श्रीराम-निर्भरा भक्ति (मानस-मर्मज्ञ पं० श्रीरामिकंकरजी उपाध्याय) .......१० (श्रीसीतारामजी गुप्ता) ...... ३२ २०- साधकोपयोगी उपदेशामृत [ व्रजभाषामें ] ६- भगवत्कुपापर विश्वास कीजिये (गोलोकवासी सन्त श्रीगयाप्रसादजी महाराज) ...... ३४ (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) ...... ११ ७- 'कृष्णं वन्दे जगदगुरुम्' (स्वामी श्रीविवेकानन्दजीके कतिपय २१- यह धन मातुभृमिके लिये है ...... ३५ २२- निन्दा महापाप ( श्रीअगरचन्दजी नाहटा) ...... ३६ प्रवचनोंके आधारपर) [प्रेषक—श्रीशरदचन्द्रजी श्रोत्रिय] ....... १३ ८- भगवानु क्रूर कैसे हो सकता है ?......१४ ९- भगवद्भक्तिका रहस्य [साधकोंके प्रति—] २४- दण्डी स्वामी श्रीकेवलाश्रमजी महाराज [ संत-चरित] (श्रीआगेरामजी शास्त्री) ...... ३९ (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज) ...... १५ २५- परिस्थितिका सद्पयोग [प्रेरणा-पथ] १०- 'प्रकट हुए प्रभु कारागृहमें कृष्ण अतुल ऐश्वर्य निधान' (श्रीअर्जुनकुमारजी बन्सल) ......१८ (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)......४१ २६- गो-महिमा.....४२ ११- सत्यका मृल्य ...... २० १२- संत-स्मरण (परम पूज्य देवाचार्य श्रीराजेन्द्रदासजी महाराजके २७- साधनोपयोगी पत्र ...... ४३ २८- व्रतोत्सव-पर्व [ भाद्रपदमासके व्रत-पर्व ] ...... ४५ गीताभवन, ऋषिकेशमें हुए प्रवचनसे साभार) ...... २१ १३- विश्वम्भर सबको सँभालता है [प्रेरक-प्रसंग] ...... २२ २९- कृपानुभूति ..... ४६ १४- असफलताकी कड़वाहटमें (ब्रह्मचारी श्रीत्र्यम्बकेश्वरचैतन्यजी ३०- पढ़ो, समझो और करो......४७ ३१- मनन करने योग्य ...... ५० चित्र-सूची १- लीलामयका रुदन-नाट्य ...... आवरण-पृष्ठ ३- लीलामयका रुदन-नाट्य ...... (इकरंगा) ......६ जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥ जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥ एकवर्षीय शुल्क पंचवर्षीय शुल्क जगत्पते । गौरीपति विराट् जय जय ₹ २५० ₹ १२५० विदेशमें Air Mail ) वार्षिक US\$ 50 (₹ 3,000) Us Cheque Collection पंचवर्षीय US\$ 250 (₹ 15,000) संस्थापक - ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका आदिसम्पादक — नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार सम्पादक - राधेश्याम खेमका, सहसम्पादक - डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़ केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित e-mail: kalyan@gitapress.org website: gitapress.org £ 09235400242 / 244

सदस्यता-शुल्क —व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—२७३००५, गोरखपुर को भेजें। Online सदस्यता हेतु gitapress.org पर Kalyan या Kalyan Subscription option पर click करें। Hinduisஅ செல்லார் திரைக்கு புருக்கு அதிக்கு அதிக்கு பிருக்கு செல்லாக்கில் சிருக்கு செல்லாக்கில் சிருக்கில் சிரிக்கில் சிர संख्या ८ ] कल्याण याद रखों—संसारके भोगोंमें सुख है ही नहीं, याद रखो — त्यागमें पहले-पहले कुछ कठिनाई जो वस्तु जहाँ नहीं है, वह वहाँ कैसे मिलेगी? ढुँढते सी लगती है, कुछ कर्कशता-सी प्रतीत होती है, इसीसे रहो, दर-दर भटकते रहो, सिर पटकते रहो सर्वत्र और मन उससे भागना चाहता है; परंतु गहराईसे विचारकर सदा; अन्तमें निराशा, निर्वेद और व्यथाके ही थपेडे देखनेपर यह स्पष्ट हो जाता है कि जितनी कठिनाइयाँ, लगेंगे। सच्चा और स्थायी सुख तो है-भगवान्में और जितने क्लेश, जितनी कर्कशता और जितनी पीड़ा उन भगवानुकी प्राप्ति होती है त्यागसे। भोग-पदार्थींकी प्राप्तिके साधनमें और प्राप्त होनेपर याद रखो-जो पुरुष त्यागसे प्राप्त होनेवाले उनके संरक्षणमें हैं, उतने त्यागमें कदापि नहीं हैं। वरं निर्मल सुखका अनुभव करता है, वह भोगोंकी ओर त्यागकी कठिनाई और भोगकी कठिनाईमें जातिगत कभी आँख उठाकर देखता ही नहीं। हाँ, भोगोंके बडा भेद है। त्यागकी कठिनाई सात्त्विक है और प्रचुर प्रलोभन भाँति-भाँतिसे सज-धजकर उसके सामने भोगकी कठिनाईमें राजसिकता तथा तामसिकता है। त्यागको कठिनाईका परिणाम परम अमृत-प्राप्ति है

स्वयमेव आते हैं। उसे अपनी ओर खींचनेके लिये, परंतु वह उन्हें उसी प्रकार ठुकरा देता है, जैसे बहुमूल्य रत्नोंको पा जानेवाला मनुष्य रंग-बिरंगे काँच-पत्थरोंको। याद रखो—त्यागीको अपनी सन्तोषमयी वृत्तियों

और त्यागभरी स्थितिसे जो सुख प्राप्त होता है, उसकी तुलनामें भोगोंके—धन, मान, यश, आराम, अधिकार आदिके सभी सुख सर्वथा तुच्छ और नगण्य हैं। सच्ची बात तो यह है कि भोग-सुख वस्तुत: सुख ही नहीं है। बुद्धिहीन मनुष्योंको भ्रमके कारण ही उसमें सुखकी प्रतीति होती है। असलमें तो उनसे दु:ख ही उत्पन्न होते हैं, इसीसे बुद्धिमान लोग भोगोंमें अपने मनको नहीं फँसने देते— ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते।

आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः॥ (गीता ५। २२) याद रखो—जो वस्तु अनित्य, परिवर्तनशील और अपूर्ण है, उससे कभी सच्चा और स्थायी सुख

देखा जाता है।

मिल ही नहीं सकता। इसीलिये आज जो किसी भोग-सामग्रीसे—धनसे, मानसे, सन्तानसे, सत्तासे अपनेको सुखी मानता है, वही कल रोता-विलपता

और जर्जरित कर देती है। *याद रखो*—भोग भ्रमाते हैं और त्याग स्व-रूपमें स्थिति कराता है। भोगोंसे कभी न पूरी होनेवाली भयानक इच्छा, कामना और वासनाएँ उत्पन्न होती हैं, जिनसे सदा दु:ख-ही-दु:ख मिलते हैं एवं त्यागसे वे सब-की-सब क्षीण होती हैं तथा खुराक न मिलनेसे-

ईंधनके अभावमें आग बुझ जानेके समान स्वयमेव बुझ

जाती हैं. मर जाती हैं।

और भोगकी कठिनाईका परिणाम विषमयी ज्वाला है,

जो लोक-परलोकके जीवनको जलाकर सर्वथा यातनापूर्ण

है—'त्यागाच्छान्तिरनन्तरम्' और शान्तिसे मनुष्य परमानन्दस्वरूप परमात्माका साक्षात्कार करता है। भोगसे अशान्ति प्राप्त होती है और वह जीवको जबर्दस्ती नरकानलमें दग्ध होनेके लिये ले जाती है।

याद रखो—त्यागसे जीवनमें शान्ति मिलती

याद रखो-यदि तुम 'भोगोंमें सुख है' इस भ्रान्तिको त्यागकर भोगोंका मोह छोड दोगे तो शीघ्र ही सुखी हो जाओगे और तुम्हारा यह त्यागका सुखी

जीवन तुम्हें भगवान्की ओर ले जायगा और ऐसा करनेपर तुम्हें निश्चय ही भगवानुकी प्राप्ति हो जायगी। 'शिव' आवरणचित्र-परिचय— लीलामयका रुदन-नाट्य

परब्रह्म परमात्मा श्रीकृष्णचन्द्रकी नित्यलीलामें वे नित्य माता है। यशोदारूपी वात्सल्य-सिन्धुके मन्थनसे जो रत्न प्रकट हुआ, वही नीलमणि श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण हैं अर्थात् यशोदाको वात्सल्य-सुख प्रदान करना भी निर्गुण-

निराकार परमात्माके श्रीकृष्णावतारका एक महत्त्वपूर्ण

कारण है।

माता यशोदा वात्सल्य-प्रेमकी साकार मूर्ति हैं।

थी, उनके लिये तो यह सौभाग्य पत्थरपर दूब जमने-जैसा था। उनके लिये सारा संसार उनके नीलमणितक ही केन्द्रित हो गया है। जैसे-जैसे नीलमणि बढ़ रहे हैं, वैसे-वैसे ही मैयाका वात्सल्य भी प्रतिक्षण वर्धमान हो

यशोदाजीको ढलती उम्रमें पुत्ररत्नकी प्राप्ति हुई

समाती हैं। वे विधातासे प्रार्थना करती हैं—हे विधाता! मेरा वह दिन कब आयेगा, जब मैं अपने लालको घुटनोंके बल चलता हुआ देखूँगी—

रहा है। वे अपने कन्हैयाको देख-देखकर फूली नहीं

नंदघरिन आनँदभरी, सुत स्याम खिलावै। कबिह घुटुरुविन चलिहेंगे, किह बिधिहि मनावै॥ तथा कभी श्रीकृष्णचन्द्रसे निहोरा करने लगती हैं— नान्हरिया गोपाल लाल, तू बेगि बड़ो किन होहि। जननीका मनोरथ पूर्ण करते हुए श्रीकृष्णचन्द्र

घुटनोंके बल चलने लगे हैं—श्रीनन्दरायजीका मणिमय आँगन है, उसमें नीलमणि घनश्याम किलकारी मारते हुए

अपना प्रतिबिम्ब दिखायी देता है और वे उसे अपने नन्हें-नन्हें हाथोंसे पकड़नेका प्रयास करते हैं। भक्त किव सूरदासजी अपनी बन्द आँखोंसे इस दृश्यका शब्दिचत्र प्रस्तुत करते हुए कहते हैं— किलकत कान्ह घुटरुवन आवत।

मनिमय कनक नंद के आँगन, बिंब पकरिबैं धावत॥

कबहुँ निरखि हिर आपु छाँह कौं, कर सौं पकरन चाहत। किलिक हँसत राजत द्वै दितयाँ, पुनि-पुनि तिहिं अवगाहत॥ इसी भावका एक अन्य पद द्रष्टव्य है—

लरकत परिंगनाइ, घूटुरूनि डोलै। निरखि-निरखि अपनो प्रति-बिंब, हँसत किलकत औ, पाछैं चितै फेरि-फेरि मैया-मैया बोलै।

(माई) बिहरत गोपाल राइ, मनिमय रचे अंगनाइ,

घुटनोंके बल चल रहे हैं। मणिखचित आँगनमें उन्हें

पाछें चितै फेरि-फेरि मैया-मैया बोलै॥ लीलामय मैयाको सुख देनेके लिये कभी लड़खड़ाते हैं, कभी किलकारी मारते हैं, कभी हँसते हैं और कभी यशोदाजीकी ओर देखकर 'मैया-मैया' कहते

हैं, इन सबसे मैया आनन्दित होती हैं, परंतु माँका स्नेह शिशुको रुदन करते देख जितना उमड़ता है, उतना हँसते देखकर नहीं, अतः मैयाके सुखके लिये

लीलामय रुदनका नाट्य करते हैं। वे मणिजटित आँगनमें घुटनोंके बल चल रहे हैं, सहसा उनको अपने ही मुखकमलकी परछाईं दिखायी देती है। उसे देखकर

वे आश्चर्यचिकत हो जाते हैं, फिर उसे अपना सखा

बनानेके लिये अपनी भुजा आगे बढ़ाते हैं, पंरतु उसे पकड़ नहीं पाते, इससे दुखी होकर माँके मुखकी ओर देखकर रोने लगते हैं—

पकरि न सके, सखेद तेरि जननी-मुख रोवन लगे कन्हैया॥

ने लगती हैं— चिकत भये अति कान्ह बिलोकत निज मुख-पंकजकी परछैयाँ॥ जन होहि। निज अनुहार निहारि सखा इक, पकरन हेतु पसारी बैयाँ।

रतनभूमि पर चलत बकैयाँ।

विवाहित स्त्रियोंके कर्तव्य संख्या ८ ] विवाहित स्त्रियोंके कर्तव्य (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) विवाहित स्त्रीके लिये पतिव्रतधर्मके समान कुछ भी पतिसहित उत्तम गतिको प्राप्त होती है और उसीको लोग नहीं है, इसलिये उसे मनसा-वाचा-कर्मणा पतिके साध्वी कहते हैं। स्त्रियोंके लिये इस लोक और सेवापरायण होना चाहिये। स्त्रीके लिये पतिपरायणता ही परलोकमें पित ही नित्य सुखका देनेवाला है। मुख्य धर्म है। इसके सिवा अन्य सब धर्म गौण हैं। इसलिये स्त्रियोंको किंचिन्मात्र भी पति के प्रतिकूल महर्षि मनुने स्पष्ट लिखा है कि स्त्रियोंको पतिकी आचरण कभी नहीं करना चाहिये। जो नारी ऐसा करती आज्ञाके बिना यज्ञ, व्रत, उपवास आदि कुछ भी न करने है, यानी पति की इच्छा और आज्ञाके विरुद्ध चलती है, चाहिये। स्त्री केवल पतिकी सेवा-शुश्रुषासे ही उत्तम उसको इस लोकमें निन्दा और मरनेपर नीच गतिकी गति पाती है एवं स्वर्गलोकमें देवता लोग भी उसकी प्राप्ति होती है। महिमा गाते हैं। जो स्त्री पतिकी आज्ञाके बिना व्रत, पति प्रतिकूल जनम जहँ जाई। बिधवा होइ पाइ तरुनाई॥ इस प्रकार पतिकी इच्छाके विरुद्ध चलनेवालीकी उपवास आदि करती है, वह अपने पतिकी आयुको हरती है और स्वयं नरकमें जाती है। यह गति लिखी है। फिर जो नारी दूसरे पुरुषोंके साथ इसलिये पतिकी आज्ञाके बिना यज्ञ, दान, तीर्थ, व्रत रमण करती है, उसकी घोर दुर्गति होती है, इसमें तो आदि भी नहीं करने चाहिये, दूसरे लौकिक कर्मोंकी तो कहना ही क्या है? बात ही क्या? स्त्रीके लिये पति ही तीर्थ है, पति ही पति बंचक परपति रति करई। रौरव नरक कल्प सत परई॥ व्रत है, पित ही देवता एवं परम पूजनीय गुरु है। ऐसा अत: स्त्रियोंको जाग्रत्की तो बात ही क्या, स्वप्नमें होते हुए भी जो स्त्रियाँ अपने पतिकी आज्ञाके बिना भी परपुरुषका चिन्तन नहीं करना चाहिये। वही उत्तम दूसरेको गुरु बनाती हैं, वे घोर नरकको प्राप्त होती हैं। पतिव्रता है, जिसके मनमें ऐसा भाव है— आजकल बहुत-से धूर्त लोग साधु, महन्त और भक्तोंके उत्तम के अस बस मन माहीं। सपनेहुँ आन पुरुष जग नाहीं॥ वेषमें 'बिना गुरु मुक्ति नहीं होती'—ऐसा भ्रम फैलाकर पित यदि कामी हो, शील एवं गुणों से रहित हो भोली-भाली स्त्रियोंको मुक्तिका झुठा प्रलोभन देकर तो भी साध्वी यानी पतिव्रताको उसे ईश्वरके समान उनके धन और सतीत्वका हरण करते हैं और घोर मानकर उसकी सदा सेवा-शुश्रुषा करनी चाहिये-नरकके भागी बनते हैं। ऐसे धूर्त-ठगोंसे माताओं और विशीलः कामवृत्तो वा गुणैर्वा परिवर्जितः। बहनोंको खूब सावधान रहना चाहिये। ऐसे पुरुषोंका उपचर्यः स्त्रिया साध्व्या सततं देववत्पतिः॥ मुख देखना भी धर्म नहीं है। मनु आदि शास्त्रकारोंने अपमान तो अपने पतिका कभी नहीं करना स्त्रियोंकी मुक्ति तो केवल पातिव्रतसे ही बतलायी है। चाहिये; क्योंकि जो नारी अपने पतिका अपमान करती गोस्वामी तुलसीदासजी भी कहते हैं— है, वह परलोकमें जाकर महान् दु:खोंको भोगती है। बृद्ध रोगबस जड़ धनहीना। अंध बधिर क्रोधी अति दीना॥ एकइ धर्म एक ब्रत नेमा। कायँ बचन मन पति पद प्रेमा।। बिनु श्रम नारि परम गति लहई। पतिब्रत धर्म छाड़ि छल गहई॥ ऐसेहु पति कर किएँ अपमाना। नारि पाव जमपुर दुख नाना॥ वहीं स्त्री पतिव्रता है, जो अपने मनसे पतिका साध्वी स्त्रियोंको पुरुषों और स्त्रियोंके जो सामान्य धर्म बतलाये हैं, उनका पालन करना चाहिये। पतिव्रत-हित-चिन्तन करती है, वाणीसे सत्य, प्रिय और हितकारी वचन बोलती है, शरीरसे उसकी सेवा एवं आज्ञाका धर्मके रहस्यको जाननेवाली स्त्रियोंको अपने पतिसे बड़े सास, ससुर आदिकी बड़े आदरके साथ सेवा-पूजा और पालन करती है। जो पतिव्रता होती है, वह अपने पतिकी इच्छाके विरुद्ध कुछ भी आचरण नहीं करती। वह स्त्री आज्ञापालन करनी चाहिये; क्योंकि वे पतिके भी पति हैं।

पतिव्रतधर्मके आदर्श स्वरूप सीता, सावित्री आदिने ऐसा बोलने चाहिये। बालकोंके सम्मुख पतिके साथ हँसी-मजाक एवं एक शय्यापर सोना-बैठना कभी नहीं करना ही किया है। जब सावित्री अपने पतिके साथ वनमें गयी, तब पतिकी आज्ञा होनेपर भी वह सास-ससुरकी आज्ञा चाहिये। जो स्त्रियाँ ऐसा करती हैं, वे अपने बालकोंको

व्यभिचारकी शिक्षा देती हैं।

माता कौसल्यासे आज्ञा, शिक्षा और आशीर्वाद लेकर ही गयी थीं। साध्वी स्त्रीको उचित है कि अपने लड़के-लडिकयोंको आचरण एवं वाणीद्वारा उत्तम शिक्षा दें। माता-पिता जो आचरण करते हैं, बालकोंपर उनका विशेष असर पड़ता है। अतः स्त्रियोंको झूठ-कपट आदि दुराचार एवं काम-क्रोध आदि दुर्गुणोंका सर्वथा त्याग करके उत्तम आचरण करने चाहिये। बहुत-सी स्त्रियाँ लड़िकयों को 'राँड़' और लड़कोंको 'तू मर जा' 'तेरा सत्यानाश हो' इत्यादि कटु और दुर्वचन बोलती हैं, एवं उनको भुलानेके लिये 'मैं तुझे अमुक चीज मँगवा

लेकर ही गयी थी। श्रीसीताजी भी श्रीरामचन्द्रजीके साथ

दूँगी' इत्यादि झुठा विश्वास दिलाती हैं और 'बिल्ली आयी' 'हाऊ आया' इत्यादिका झूठा भय दिखाती हैं। इससे बहुत नुकसान होता है, अतएव ऐसी बातोंसे स्त्रियोंको बचना चाहिये। बालकका चित्त कोमल होता है, उसमें ये बातें सहज ही जम जाती हैं और वह झूठ बोलना, धोखा देना आदि सीख जाता है, एवं अत्यन्त भीरु और दीन बन जाता है। बालकोंके मनमें वीरता, धीरता और गम्भीरता उत्पन्न हो, ऐसे ओज और तेजभरे हुए सच्चे वचनोंद्वारा उनको आदेश देना चाहिये। उनमें बुद्धि और ज्ञानकी उत्पत्तिके लिये सत्-शास्त्रकी शिक्षा

देनी चाहिये। बालकोंको गाली आदि नहीं देनी चाहिये;

क्योंकि गाली देना उनको गाली सिखाना है। अश्लील. गंदे-कड्वे अपशब्दोंका प्रयोग भी नहीं करना चाहिये।

संगका बहुत असर पड़ता है। पशु-पक्षी भी संगके

है कि गाली बकनेवालों के पास रहनेवाले पक्षी भी गाली

बका करते हैं। अत: सदा सत्य, प्रिय, सुन्दर और मधुर

चरित्र पढ्नेका अभ्यास रखना चाहिये और उनके अनुसार ही बालकोंको शिक्षा देनी चाहिये। बच्चोंको खिलाने-पिलाने इत्यादिमें भी अच्छी

परपुरुषका दर्शन, स्पर्श, एकान्तवास एवं उसके

चित्रका भी चिन्तन नहीं करना चाहिये। लोभ, मोह,

शोक, हिंसा, दम्भ, पाखण्ड आदिसे सदा बचकर रहना

चाहिये और उत्तम गुण एवं आचरणोंके लिये गीता, रामायण, भागवत, महाभारत एवं सती-साध्वी स्त्रियोंके

भाग ९३

शिक्षा देनी चाहिये। मदालसाने अपने बालकोंको बाल्यावस्थामें ही ज्ञान और वैराग्यकी शिक्षा देकर उन्हें

उच्च श्रेणीका बना दिया था। बच्चे बुरे बालकों एवं बुरे

स्त्री-पुरुषोंका संग करके कुशिक्षा ग्रहण न कर लें, इसके लिये माता-पिताको विशेष ध्यान रखना चाहिये।

बच्चोंको ऐसी शिक्षा देनी चाहिये, जिससे उनका प्रेम

प्रभावसे सुशिक्षित और कुशिक्षित हो जाते हैं। सुना जाता है कि मण्डनिमश्रके द्वारपर रहनेवाले पक्षी भी शास्त्रवचनोंका उच्चारण किया करते थे। देखा भी जाता

हिर्मिक्षर्थभंद्रमा ही बहुता प्रेम्ह् । ध्रम्म ५ प्रारुष्ठः । ध्रम् ५ स्वयं स्रोभागव बात्यक्षे प्रेम् । स्वर्भ हिर्म ५ स्वर्भामा विश्वास्त्र । ध्रम् । स्वर्भ स्वर्भामा विश्वास्त्र । ध्रम् । स्वर्भ स्वय्य स्वय्य स्वयः स्वर्य स्वयः स्वर्य स्वयः स्व

शृंगार, देहकी सजावट, विलासिता आदिमें न होकर सदाचार, सद्गुण, सादगी, सेवा और ईश्वर तथा धर्म आदिमें प्रवृत्ति हो।

श्रीराम-निर्भरा भक्ति ( मानस-मर्मज्ञ पं० श्रीरामिकंकरजी उपाध्याय ) जब भी गोस्वामीजी किसी भक्तको कोई बढिया अपने मनके दोषोंकी इतनी चिन्ता क्यों है, जो इन दोषोंको वस्तु प्राप्त करते हुए देखते हैं, तो वे झट जाकर पीछे खड़े दूर करनेकी मुझसे प्रार्थना कर रहे हो? बात यह है महाराज! तुलसीदासजी बोले—

हो जाते हैं। जैसे, जब प्रसाद बँटता है, तो लोगोंकी भीड़ लग जाती है-यह सोचकर कि प्रसाद एक ही व्यक्तिके

लिये तो नहीं होगा, वह सबको मिलेगा। इसी प्रकार से कुरूप और गन्दे-से-गन्दा बालक भी माँको प्यारा लगता गोस्वामीजी भी जब बढ़िया वस्तु बँटते हुए देखते हैं, तो

पीछे जाकर जरूर खड़े हो जाते हैं। सुन्दरकाण्डमें निर्भरा भक्ति बँटने लगी। निर्भरा भक्तिका

सरल अर्थ यह है कि जैसे एक छोटा बच्चा अपने कल्याणके

लिये—अपने योग-क्षेमके लिये पूरी तरहसे माँपर निर्भर होता है, वैसे ही जब भक्त पूर्णरूपेण भगवान्के प्रति अपनेको

समर्पित करके उनपर निर्भर हो जाता है, तब वह अपने जीवनमें समग्रता और धन्यताका अनुभव करता है। तो जब

गोस्वामीजीने देखा कि हनुमान्जीको माँने निर्भरा भक्ति दी— करहुँ कृपा प्रभु अस सुनि काना। निर्भर प्रेम मगन हनुमाना॥ (रा०च०मा० ५। १७। ४)

तो वे भी तुरंत भगवान्से कहने लगे कि प्रभु, मुझे भी दीजिये। क्या दुँ?

भक्तिं प्रयच्छ-भक्ति दीजिये। भई, कौन-सी भक्ति दूँ? महाराज, वही जो यहाँ बँट रही है और जिसे लेनेके

लिये हनुमान्जी बेचैन हैं— भक्तिं प्रयच्छ रघुपुंगव निर्भरां मे। बस, वही निर्भरा भक्ति मुझे भी दीजिये।

तो इससे तुम सन्तुष्ट हो जाओगे? नहीं महाराज! इसके साथ आप यह भी दीजिये कि-

कामादिदोषरहितं कुरु मानसं मेरे मनके काम आदि दोषोंको दूर कर दीजिये। सो क्यों ? प्रभु बोले, जब तुमने मुझपर पूरी तरहसे

यह और क्यों कहते हो कि मेरे मनके दोषोंको दूर कर दीजिये? यदि मैं तुम्हारा दोषयुक्त मन स्वीकार कर लेता हूँ और तुम्हारे दोषोंकी ओर दृष्टि नहीं डालता, तो तुम्हें

निर्भर रहनेके लिये निर्भरा भक्ति माँग ही ली, तब फिर

'बालकके प्रति मॉॅंके मनमें बडी ममता होती है। कुरूप-

है, पर दूसरोंको तो वह प्यारा नहीं लगता। इसी प्रकार भले ही आपको अपना कुरूप बालक उतना ही प्रिय लगता है, जितना अपना सुन्दर बालक और भले ही आप

दोषयुक्त व्यक्तियोंको भी अपनानेमें संकोच नहीं करते, फिर भी, महाराज, मुझे एक बातकी बड़ी चिन्ता सताती है। मुझ-जैसे गन्दे व्यक्तिको अपनानेके कारण कहीं आपको

कलंक न लगे, यही सोचकर मुझे कष्ट होता है।' मुझपर कलंक क्यों लगने लगा? बात यह है महाराज! यदि बालक कुरूप हो, तब तो

लोग प्रकृतिको दोष देते हैं, पर यदि वह गन्दा हो, तो लोग बालककी निन्दा नहीं करते, उसकी माँकी निन्दा करते हैं। कहते हैं—'कैसी फूहड़ है, जो अपने बालकको गन्दगीमें

लिपटाये रखे हुए है। इसी प्रकार, प्रभु! यदि आपको पा लेनेके बाद भी मेरे मनमें गन्दगी बनी रहेगी, तो लोग आपपर ही कलंक लगायेंगे और कहेंगे कि यह कैसा भगवान् है, जो अपने निकटस्थ लोगोंके भी दोष दूर नहीं कर पाता! सुन्दर,

मनवाले व्यक्तिको भी स्वीकार कर लें, पर लोग तो उसे

'श्रीरामचरितमानस' का यही दर्शन है।

स्वच्छ बालकको देखकर किसीका भी मन उसे गोदमें लेनेको हो जाता, पर यदि वह गन्दगीमें लिपटा हुआ हो, तब तो उसका पिता भी एक बार यही चाहता है कि वह पहले स्वच्छ हो जाय, तब उसे गोदमें लूँ। तो महाराज! भले ही आप अपने स्नेह, करुणा और वात्सल्यके कारण गन्दे

दुरदुरायेंगे ही। इसीलिये मैं आपसे याचना कर रहा हूँ कि मेरे मनकी गन्दगीको दूर कर दीजिये। तो, गोस्वामीजीका तात्पर्य यह है कि भगवान्की

भक्तिका प्राप्त होना ही यथेष्ट नहीं है। यदि हमारे जीवनमें दोष बने हुए है, विकारोंका खेल बना हुआ है, तो भिक्त पा लेनेमें ही जीवनकी समग्रता और सार्थकता नहीं है—

भगवत्कृपापर विश्वास कीजिये संख्या ८ ] भगवत्कृपापर विश्वास कीजिये ( नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार ) मान और धनकी चाह किसको नहीं होती? कुसंस्कारोंको सिर उठानेका मौका नहीं मिलता और संसारमें साधारणतया सभीको होती है। जिनको नहीं अन्तमें वे भगवत्-शरणागित या तत्त्वज्ञानोदयके प्रभावसे होती, वे अतिमानव हैं—महापुरुष हैं। इस दृष्टिसे यदि मर जाते हैं; परंतु जबतक ऐसा नहीं होता तबतक साधन किसीको धन-मानकी चाह है और वह आजकल और न होनेसे अनुकूल वातावरण पाते ही उन्हें सिर उठानेका भी बलवती हो रही है तो इसमें कोई आश्चर्यकी बात और बाधा न पाने तथा बाहरी सहायता मिल जानेसे नहीं है। आश्चर्य तो तब होता जब अन्दर छिपी हुई प्रबलरूपसे आक्रमण करके अपनी अबाध सत्ता जमानेके चाह अन्दर-ही-अन्दर दबकर मर जाती, उसका अस्तित्व लिये कोशिश करनेका मौका मिल ही जाता है। ऐसी दशामें बड़े-बड़े नामी-गिरामी तपस्वी और साधकोंका ही नष्ट हो जाता। जीवके अनन्त जन्मोंके भोगोंके संस्कार मनमें रहते पतन देखा जाता है, हमलोग तो किस बागकी मूली हैं! हैं, उन संस्कारोंको लिये हुए वह मनुष्य-शरीरमें आता मनुष्यको भगवान्ने एक विवेकशक्ति दी है, जिसके द्वारा वह भले-बुरेका निर्णय कर सकता है। यह है; यहाँ आनेपर यहाँकी परिस्थितिके अनुसार किसी-किसीके वे संस्कार प्रतिकूल नये संस्कारोंसे दब जाते हैं विवेकशक्ति मनुष्यमात्रमें होती है, चाहे उसके पूर्व और किसी-किसीके अनुकूल नये संस्कारोंका बल संचित कर्म कितने ही अशुभ क्यों न हों। मनुष्यको पाकर विशेषरूपसे बढ़ जाते हैं। यह स्मरण रखना परमात्माकी यह खास देन है। यह विवेकशक्ति भी चाहिये कि अनुकूल सहायता और शक्ति मिलनेसे पूर्व परिस्थितिके अनुसार जाग्रत्-सुप्त और तीव्र-मन्द हुआ करती है। जिस मनुष्यके आचरण जितने ही शुद्ध होते संस्कारोंका बल और विस्तार बहुत बढ़ जाता है; क्योंकि उनकी सारी शक्तियोंको चारों ओरसे विकसित होनेका हैं, जिसके इन्द्रियद्वार जितने ही सत्के सेवनमें लगे रहते अवसर और सुभीता मिल जाता है। परंतु प्रतिकूल हैं, उनकी विवेकशक्ति उतनी ही जाग्रत् और तीव्र रहती बाधक शक्तिका सामना होनेपर पूर्व संस्कारोंका बल है। जरा-सा बुरा संकल्प मनमें उठते ही यह विवेकशक्ति उसे यथार्थरूपमें उस संकल्पका स्वरूप बतलाकर उसे बहुत क्षीण हो जाता है। कारण, उनको बाधक शक्तिका सामना करना पड़ता है, जिससे उनकी शक्तिका क्षय कार्यान्वित न करनेका आदेश करती है। इसीको 'अन्तर्ध्वनि' होता है और इस युद्धमें अपनी शक्तिके स्वाभाविक या 'आत्माकी ध्वनि' कहते हैं। कभी पहले-पहल कोई विकास और विस्तारका अवसर और सुभीता नहीं मनुष्य कुसंगवश चोरी या व्यभिचार करनेका मन करता मिलता। यही नियम सबके लिये लागू होता है। अतएव है, तब अन्दरकी यह आत्माकी आवाज उससे कहती हमारे संचित कुसंस्कार यहाँ जब सत्संग, स्वाध्याय, हैं—'यह पाप है, बुरा कर्म है; इसे न करो।' परंतु उस सिच्छक्षा, सिद्वचार, सद्वस्तुसेवन और भगवान्के भजनके मनुष्यका वर्तमान कुसंग यदि बलवान् होता है तो वह प्रतापसे कुछ दब जाते हैं, तब हम समझ बैठते हैं कि उसके प्रभावमें आकर अन्तरात्माकी इस आवाजकी हमारे सब कुसंस्कारोंका नाश हो गया और हम सर्वथा अथवा विवेकशक्तिके निर्णय और आदेशकी अवहेलना शुद्ध हो गये। होता यह है कि कुसंस्कार नष्ट नहीं होते, करके उस असत् कर्मको कर बैठता है। जहाँ एक बार वे दब जाते हैं, दुबक जाते हैं, छिप जाते हैं और ऐसा हुआ, वहीं उसका नया संस्कार उत्पन्न होकर अनुकूल शक्तिका सहारा न मिलनेसे प्रतिक्षण क्षीण होते विवेक-शक्तिसे लड़ने लगता है। कुछ समयतक तो ऐसा चले जाते हैं। ऐसी अवस्थामें यदि सत्संग, सद्विचार, चलता है, परंतु यदि कुसंग और कुकर्म चालू रहते हैं भजन आदि उपर्युक्त साधन चालू रहते हैं तब तो तो विवेकशक्ति मन्द पड़ जाती है, वह सो-सी जाती है,

भाग ९३ ठीक निर्णय नहीं कर पाती और न ठीक आदेश या चाहे वे अज्ञानकृत ही हों। इस स्थितिमें अच्छे-अच्छे परामर्श देनेकी शक्ति रखती है। यही गीतोक्त राजसी लोगोंका मन डगमगा जाना सम्भव है। परंतु विचारशील पुरुषको यहीं तो अशुभके साथ युद्ध करना है। यही तो बुद्धि है, जो धर्म-अधर्म और कर्तव्य-अकर्तव्यका यथार्थ निर्णय नहीं कर पाती। इसके बाद होते-होते लड़ाईका मौका है। इस लड़ाईमें विजय पाना ही पुरुषार्थ नवीन असत्संस्कारोंका समूह एकत्र होकर इस विवेक-है। यही परम साधन है। 'क्या तुच्छ धन या मानकी बृद्धिको सर्वथा छिपा देता है और पूर्वजन्मार्जित कुसंस्कारोंको इच्छा भगवानुके पथपर चढे हुए पुरुषको वापस लौटाकर जगाकर-दोनों मिलकर एक नयी मोहाच्छादित बुद्धि नीचे गिरा सकती है!' ऐसा मनमें प्रश्न करके आत्माके उत्पन्न करते हैं, जो प्रत्येक कुसंस्कार और कुकर्मको निश्चयसे यह दृढ़ उत्तर देना चाहिये 'नहीं गिरा सत्संस्कार और सत्कर्म बतलाकर उनका समर्थन करती सकती'। बुद्धि कितनी ही तामसी हो जाय, यदि आत्मा है। यही गीतोक्त तामसी बुद्धि है, जिसकी महिमाका जाग्रत् रहे, बुद्धिके साथ न मिल जाय, तो बुद्धिका बखान करते हुए भगवान् कहते हैं-तमोगुण ठहर नहीं सकता। व्यक्तिको घबराना नहीं चाहिये, भगवान्का भरोसा अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तमसावृता। रखना चाहिये। आत्मामें सत्साहस और आत्मनिर्भरता सर्वार्थान् विपरीतांश्च बुद्धिः सा पार्थ तामसी॥ पैदा करना चाहिये। प्रलोभनोंको पछाडना चाहिये। भगवान् (१८।३२) 'हे अर्जुन! जो बुद्धि तमोगुणसे ढकी हुई अधर्मको मंगलमय हैं। उनके कल्याणमय वरद हस्तको अपने मस्तकपर धर्म बतलाती है और सभी बातोंमें उलटा निर्णय करती देखना चाहिये, अनुभव करना चाहिये कि वे रक्षा करनेको तैयार हैं। घबराकर उनका तिरस्कार न करे। वे सतत साथ है, वह तामसी है।' इस तामसी बुद्धिके राज्यमें मनुष्य विपरीतगामी स्वभावत: ही हो जाता है, उसे अपने हैं—कहते हैं. दोषपूर्ण काममें दोष नहीं दीखता। कहीं पूर्वके शुभ 'मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि।' संस्कार कभी मौका पाकर चुपके-से उसे चेताते हैं। दबे —फिर डर काहेका ? हाँ, साधक यदि हिम्मत हार हुए सच्चे हितैषीकी भाँति उसे सावधान करते हैं, तब दे तो जरूर डर है। ये मनमें घुसे हुए चोर भाग जायँगे, वे साधकको आपको भगवान्के आश्रयमें जाते देखेंगे। क्षण-कालके लिये उसे दु:ख होता है, वह मोहसे वे उसे रोकना चाहेंगे, लोभ और भय दिखाकर पथभ्रष्ट निकलना चाहता है; परंतु तामसी बुद्धि उससे सहजमें ऐसा होने नहीं देती। वह बड़े सुन्दर-सुन्दर मोहक दृश्य करना चाहेंगे; परंतु यदि वह सजग, सावधान और दिखा-दिखाकर उसे अपने ही आदेशके अनुसार चलनेके निश्चयपर अटल रहे तो वे निराश होकर उसके हृदयको लिये ललचाती है और वह मनुष्य उसीको उत्तम और छोड़कर कोई दूसरा घर ढूँढ़ेंगे। लाभप्रद मानकर उसी मार्गपर चलने लगता है। पहले भगवानुका नाम किसी भी भावसे लीजिये। मनमें किये हुए अपने शुभ आचरणोंको वह 'भूलमें जीवन प्रसन्तताका अनुभव कीजिये, भगवान्की कृपाको अपने व्यर्थ खोया गया' समझता है और वर्तमानके अशुभ ऊपर बरसते देखकर! देखिये, देखिये—अनवरत अपार आचरणोंको 'जीवनका वास्तविक लाभ'। पूर्वके बुरे वर्षा हो रही है, भगवत्कृपाके सुधासिन्धुके मधुर संस्कारोंकी पूर्ण जागृति और सात्त्विक बुद्धि अथवा जलकी! देखकर शीतल, शान्त हो जाइये—नहाकर सारे विवेकशक्तिकी लुप्तप्राय स्थितिके साथ ही तामसी पाप-तापोंको धो डालिये। पीकर अमृतमय—आनन्दमय, बुद्धिके पूर्ण प्रभावकी इस शोचनीय अवस्थासे भगवान्की शान्तिमय स्वयं बन जाइये। विश्वास कीजिये-ऐसी ही कृपासे ही मनुष्य निस्तार पा सकता है। बात है, इसमें तिनक भी बनावट नहीं है; सत्य है—सदा Hinखिरांडमानुष्टांडेंटकुरां 'डे क्षेरेट सुमित्र हार होते हो हो कि कार कार हो। MÀ विष्ट वार्षा कार पाठ पर्दे के कि वार को वास कार हो। संख्या ८] 'कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम्' 'कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम्' ( स्वामी श्रीविवेकानन्दजीके कतिपय प्रवचनोंके आधारपर ) लगभग पाँच हजार वर्ष पूर्व महाभारत-कालमें होकर तू भी इसी तरह कर्म कर।.... श्रीकृष्णका आविर्भाव हुआ, जिन्होंने तत्कालीन समाजको न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किञ्चन। नये परिधानमें ब्रह्मज्ञानका उपदेश दिया। नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि॥ हम किसी व्यक्तिके चरित्रको उससे सम्बन्धित यदि ह्यहं न वर्तेयं जातु कर्मण्यतन्द्रितः। उपाख्यानोंका विश्लेषण करके समझ सकते हैं। कृष्णके मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः॥ चरित्रमें हमें केन्द्रीय भाव अनासक्ति मिलता है। (गीता ३।२२-२३) कृष्णमें हमें उनके सन्देशमें .... दो विचार सर्वीपरि अनासक्त प्रेम (Unattached love) हानि नहीं मिलते हैं, पहला है—विभिन्न विचारोंका सामंजस्य पहुँचायेगा। 'मेरा' का विचार लेकर कुछ न करो। कर्तव्य कर्तव्यके लिये, कर्म कर्मके लिये। (harmony of different ideas), दूसरा है—अनासक्ति। कृष्णका कहना है कि अनुष्ठान, देवताओंकी पूजा जब हम उस अनासक्तितक पहुँचते हैं तभी और दन्तकथाएँ सब ठीक हैं। "क्यों? क्योंकि वे सब जगतुके आश्चर्यजनक रहस्यको समझ सकते हैं-उसी लक्ष्यकी ओर ले जाते हैं। अनुष्ठान ग्रन्थ और कैसे वह (जगत्) तीव्र क्रियाशीलता और स्पन्दन है आडम्बर—ये सब शृंखलाकी कड़ियाँ हैं। कृष्णने कहा तथा साथ ही गहन शान्ति और निश्चलता है, किस है—एक ही केन्द्रसे निकली इन शृंखलाओंमें-से किसी प्रकार वह प्रतिक्षण कार्य और प्रतिक्षण विश्राम भी एकको पकड लो। कोई एक पग दुसरेकी अपेक्षा बडा है। वह जो प्रखर कर्मके मध्य महत्तम अकर्म और नहीं है। "धर्मके किसी भी पक्षकी, जहाँतक वह निश्छल महत्तम अकर्ममें प्रखर कर्म देखता है, योगीका पदलाभ है, भर्त्सना न करो। इन शृंखलाओंमें किसी एकको पकड़े कर चुका है। रहो, वही तुम्हें केन्द्रमें खींच ले जायगी। शेष सब स्वयं कर्मण्यकर्म यः पश्येदकर्मणि च कर्म यः। तुम्हारा हृदय ही तुम्हें सिखा देगा। भीतर बैठा हुआ गुरु स बुद्धिमान्मनुष्येषु स युक्तः कृत्स्नकर्मकृत्॥ सभी मत-मतान्तरों और दर्शनोंकी शिक्षा दे देगा।'''' (गीता ४। १८) इस संसारमें हम विविध प्रकारकी उपासना देखते वहीं सच्चा कर्मी है, अन्य कोई नहीं। हम अल्प-सा हैं। रोगी मनुष्य ईश्वरके प्रति बड़ा पूजा-भाव रखता कर्म करते हैं और अपनेको ध्वस्त (break ourselves) कर है।" अपनी सम्पदाको खो देनेवाला व्यक्ति धन पानेके डालते हैं। क्यों ? हम उस कर्मके प्रति आसक्त हो जाते हैं। यदि हम उससे आसक्त न हो जायँ तो उसके साथ-साथ निमित्त बडी पूजा करता है। लेकिन सर्वोच्च उपासना उस व्यक्तिकी है, जो ईश्वरको ईश्वरके निमित्त ही प्रेम करता हमें अनन्त विश्राम भी प्राप्त होगा।... है। अन्य (प्रकारकी उपासना) निम्नस्तरीय है। किंतु कृष्ण अनासक्तिके इस रूपतक पहुँच पाना कठिन है। किसीकी निन्दा नहीं करते। निश्चल खडे रहनेकी अपेक्षा अतएव कृष्ण हमें निरन्तर मार्ग और पद्धतियाँ दिखलाते कुछ करना अधिक अच्छा है। जो मनुष्य ईश्वरकी उपासना हैं। प्रत्येक व्यक्तिके लिये सबसे सरल मार्ग है (अपना) आरम्भ कर देता है, उसका विकास क्रमश: होता रहेगा कार्य करना और फलोंको ग्रहण न करना। यह हमारी और वह ईश्वरको केवल प्रेमके ही निमित्त प्रेम करने लगेगा। तृष्णा (desire) है, जो हमें बाँधती है। यदि हम कर्मींके फलोंको ग्रहण करते हैं, चाहे वे अच्छे हों या बरे, तो दिन और रात कर्म करते रहो। 'देखो, मैं तो विश्वका प्रभु हूँ। मेरा कोई भी कर्तव्य नहीं है। हर हमको उन्हें सहन करना ही पड़ेगा, किंतु यदि हम कर्म कर्तव्य बन्धन है, किंतु मैं कर्मके निमित्त कर्म करता स्वयं अपने लिये न करके पूर्णरूपेण प्रभुकी महिमाके रहता हूँ। यदि मैं एक क्षणको भी कर्म बन्द कर दूँ, तो निमित्त करें तो फल अपनी चिन्ता स्वयं ही कर लेंगे। सब अस्त-व्यस्त हो जाय।' कर्तव्यके विचारसे रहित कर्म करनेका ही तुम्हें अधिकार है, उनके फलोंका नहीं।

िभाग ९३

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन। भ्रामयन्सर्वभृतानि यन्त्रारूढानि मायया॥

जब धर्मकी ग्लानि होती है और अधर्मकी वृद्धि मा कर्मफलहेतुर्भूमा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥ होती है, तब मैं अवतार लेता हूँ। बार-बार मैं आता हूँ। (गीता २।४७) अतएव जब कभी तू किसी महान् आत्माको मानव-यदि तुम सबल हो तो वेदान्त-दर्शनको ग्रहणकर

स्वाधीन हो जाओ। यदि तुम वह नहीं कर सकते तो जातिका उत्थान करनेके निमित्त संघर्ष करता देख, जान ईश्वरकी उपासना करो, यदि वह नहीं हो सके तो किसी ले कि मैं आया हैं।

प्रतिमाकी पूजा करो। यदि वह भी करनेकी शक्ति तुममें न हो परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।

तो लाभके विचारसे रहित होकर कुछ शुभ कर्म करो। धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥ तुम्हारे पास जो कुछ है, वह सब प्रभुकी सेवामें समर्पित कर (गीता ४।८) दो। पत्र, पुष्प और जल मेरी वेदीपर कोई भी व्यक्ति जो कुछ यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।

तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसम्भवम्॥ चढाता है, मैं उसे एक समान प्रसन्नतासे ग्रहण करता हँ—

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति। (गीता १०।४१) श्रीकृष्णके आविर्भावके समयमें जैसी परिस्थितियाँ तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः॥

थीं, वैसी परिस्थितियाँ और घटनाएँ हम अपने समयमें (गीता ९।२६)

यदि तुम कुछ भी, एक शुभ कर्मतक नहीं कर भी घटित होते देख रहे हैं। दुर्योधन और दु:शासन रोज

सकते, तो (प्रभुकी) शरण लो। ईश्वर समस्त प्राणियोंके ही द्रौपदीका चीरहरण कर रहे हैं। कंस और जरासंधके

हृदयमें स्थित है और वह उनको अपने चक्रपर भरमाया अत्याचारोंसे प्रजा करुण-क्रन्दन कर रही है। कृष्ण गीतामें दिये वचनको अवश्य पूरा करेंगे, ऐसा मेरा करता है। अपने सम्पूर्ण हृदय और आत्मासे तू उनकी शरणमें जा।

विश्वास है, पर हम उनकी ओर जायँ तो।

ईश्वरः सर्वभूतानां हृदेशेऽर्जुन तिष्ठति। [ प्रेषक — श्रीशरदचन्द्रजी श्रोत्रिय ]

भगवान् क्रूर कैसे हो सकता है?-च्यांगकाई शेकके समयकी बात है। जापानके दबदबेसे अनेक देश भयभीत थे। च्यांगकाई शेककी

पत्नी अपनी मातासे मिलने मायके गयी थीं। माँकी ईश्वरमें अटूट आस्था थी। वे प्राय: कहा करती थीं

कि यदि भगवान्के प्रति पूर्ण भक्ति-भावना रखनेवाला व्यक्ति संकटके समय भगवान्से प्रार्थना करे तो

भगवान् उसकी प्रार्थना पूरी करनेको तत्पर हो उठते हैं।

बेटीने माँसे कहा—'जापानसे यदि युद्ध हुआ तो चीन-समेत कई देश पूरी तरह नष्ट हो जायँगे। माताजी, आपका तो ईश्वरमें पूर्ण विश्वास है, आप ईश्वरसे प्रार्थना करके इस सम्भावित खतरेसे छुटकारा दिला सकती हैं।'

माँने पूछा—'मैं क्या प्रार्थना करूँ भगवानुसे?' बेटीने कहा—'आप भगवानुसे प्रार्थना करें कि भगवन्! जापानमें ऐसा भृकम्प ला दें कि पूरा जापान नष्ट हो जाय।'

च्यांगकाई शेककी सासने यह सुना तो वे बोलीं—'बेटी, क्या भगवान् इतना क्रूर हो सकता है कि वह किसीकी प्रार्थनापर आपदा लाकर असंख्य निर्दोषोंकी हत्याको तत्पर हो जाय? किसी भी देशकी

अधिकांश जनता तो शान्तिप्रिय होती है। फिर तुम अपने हृदयमें प्रत्येक जापानीके अनिष्टकी कामना करके अपने हृदयको कलुषित क्यों करती हो?'

च्यांगकाई शेककी पत्नी माँके हृदयकी विशालता देखकर हतप्रभ रह गयी। उसने जापानके प्रति

घृणाकी भावनाका त्याग कर दिया।

संख्या ८ ] भगवद्धक्तिका रहस्य साधकोंके प्रति— भगवद्भिक्तका रहस्य ( ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज ) तप, व्रत, तीर्थ आदि बहुत परिश्रमसाध्य पुण्य-साधनोंके भक्ति भक्त भगवंत गुरु चतुर नाम बपु एक। द्वारा भी वह लाभ नहीं प्राप्त होता, जो कि सत्संगसे इनके पद बंदन किएँ नासत बिघ्न अनेक॥ अनायास ही हो जाता है: क्योंकि प्रेमी संत-महात्माओंके भक्तिका मार्ग बतानेवाले संत 'गुरु,' भजनीय 'भगवान्,'भजन करनेवाले 'भक्त' तथा संतोंके उपदेशके द्वारा कथित भगवत्कथाके श्रवणसे जीवके पापोंका नाश अनुसार भक्तकी भगवदाकार वृत्ति 'भक्ति' है। ये नामसे हो जाता है। इससे अन्त:करण अत्यन्त निर्मल होकर चार हैं, किंतु तत्त्वतः एक ही हैं। भगवान्के चरणकमलोंमें सहज ही श्रद्धा और प्रीति जो साधक दृढता और त्वराके साथ भगवान्के उत्पन्न हो जाती है। भक्तिका मार्ग बतानेवाले संत-नामका जप और स्वरूपका ध्यानरूप भक्ति करते हुए महात्मा ही भक्तिमार्गके गुरु हैं। इनके लक्षणोंका वर्णन तेजीसे चलता है, वही भगवानुको शीघ्र प्राप्त कर लेता करते हुए श्रीमद्भागवतमें कहा है-है। कृपालुरकृतद्रोहस्तितिक्षुः सर्वदेहिनाम्। जो जिव चाहे मुक्तिको तो सुमरीजे राम। सत्यसारोऽनवद्यात्मा समः सर्वोपकारकः॥ हरिया गैलै चालताँ जैसे आवे गाम॥ कामैरहतधीर्दान्तो मृदुः शुचिरिकञ्चनः। इस भगवद्धिक्तको प्राप्तिके अनेक साधन बताये अनीहो मितभुक् शान्तः स्थिरो मच्छरणो मुनिः॥ अप्रमत्तो गभीरात्मा धृतिमाञ्जितषड्गुणः। गये हैं। उन साधनोंमें मुख्य है—संत-महात्माओंकी कृपा और उनका संग। श्रीरामचरितमानसमें कहा है-अमानी मानदः कल्पो मैत्रः कारुणिकः कविः॥ भक्ति सुतंत्र सकल सुख खानी। बिनु सत्संग न पावहिं प्रानी॥ (१8 | 18 | 189 - 38)भगति तात अनुपम सुखमूला। मिलइ जो संत होइँ अनुकूला॥ 'भगवान्का भक्त कृपालु, सम्पूर्ण प्राणियोंमें वैरभावसे रहित, कष्टोंको प्रसन्नतापूर्वक सहन करनेवाला, सत्यजीवन, उन संतोंका मिलन भगवत्कृपासे ही होता है। श्रीगोस्वामीजी कहते हैं-पापशून्य, समभाववाला, समस्त जीवोंका सुहृद्, कामनाओंसे कभी आक्रान्त न होनेवाली शुद्ध बुद्धिसे सम्पन्न, संयमी, संत बिसुद्ध मिलहिं परि तेही। चितवहिं राम कृपा करि जेही॥ .....। बिनु हरिकृपा मिलहिं नहिं संता।। कोमलस्वभाव, पवित्र, पदार्थोंमें आसक्ति और ममतासे रहित, व्यर्थ और निषिद्ध चेष्टाओंसे शून्य, हित-मित-.....। सतसंगति संसृति कर अंता।। असली भगवत्प्रेमका नाम ही भक्ति है। मानसमें मेध्य-भोली, शान्त, स्थिर, भगवत्परायण, मननशील, प्रमादरहित, गम्भीरस्वभाव, धैर्यवान्, काम-क्रोध-लोभ-कहा है— मोह-मद-मत्सररूपी छ: विकारोंको जीता हुआ, मानरहित, पन्नगारि सुनु प्रेम सम भजन न दूसर आन। सबको मान देनेवाला, भगवान्के ज्ञान-विज्ञानमें निपुण, अस बिचारि पुनि पुनि मुनि करत राम गुन गान॥ इस प्रकारके प्रेमकी प्राप्ति संतोंके संगसे अनायास सबके साथ मैत्रीभाव रखनेवाला, करुणाशील और ही हो जाती है; क्योंकि संत-महात्माओंके यहाँ परम प्रभु तत्त्वज्ञ होता है।' परमेश्वरके गुण, प्रभाव, तत्त्व, रहस्यकी कथाएँ होती ऐसे भगवद्भक्त ही वास्तवमें भक्तिमार्गके प्रदर्शक रहती हैं। उनके यहाँ यही प्रसंग चलता रहता है। हो सकते हैं। भगवानुकी कथा जीवोंके अनेक जन्मोंमें किये हए इस जीवको संसारके किसी भी उच्च-से-उच्च पद अनन्त पापोंकी राशिका नाश करनेवाली एवं हृदय और या पदार्थकी प्राप्ति क्यों न हो जाय, इसकी भूख तबतक कानोंको अतीव आनन्द देनेवाली है। जीवको यज्ञ, दान, नहीं मिटती, जबतक कि यह अपने परम आत्मीय

भाग ९३ भगवानुको प्राप्त नहीं कर लेता; क्योंकि भगवानु ही एक 'हे अर्जुन! स्त्री, वैश्य, शूद्र तथा पापयोनि— चाण्डालादि जो कोई भी हों, वे भी मेरी शरण होकर ऐसे हैं, जिनसे सब तरहकी पूर्ति हो सकती है। उनके सिवा सभी अपूर्ण हैं। पूर्ण केवल एक वे ही हैं और परम गतिको ही प्राप्त होते हैं।' वे पूर्ण होते हुए भी सम्पूर्ण प्राणियोंके प्रति बिना कारण 'फिर इसमें तो कहना ही क्या है, जो पुण्यशील ब्राह्मण तथा राजर्षि भक्तजन मेरी शरण होकर परम ही प्रेम और कृपा करनेवाले परम सुहृद् हैं; साथ ही वे सर्वत्र और सर्वशक्तिमान् भी हैं। कोई सर्वसुहृद् तो हो गतिको प्राप्त होते हैं।' यहाँ भगवान्ने जातिमें सबसे छोटे और आचरणोंमें पर सब कुछ न जानता हो, वह हमारे दु:खको न जाननेके कारण दूर नहीं कर सकता और यदि सब कुछ भी सबसे गिरे हुए-दोनों तरहके मनुष्योंको ही जानता हो पर सर्वसमर्थ न हो तो भी असमर्थताके कारण भगवद्धिक्तका अधिकारी बतलाया। यद्यपि विधि-निषेधके दु:ख दूर नहीं कर सकता। एवं सब कुछ जानता भी अधिकारी मनुष्य ही होते हैं, तो भी 'पापयोनि' शब्द हो और समर्थ भी हो, तब भी यदि सुहृद् न हो तो दु:ख तो इतना व्यापक है कि इससे गौणीवृत्तिसे पश्-पक्षी आदि सभी प्राणी लिये जा सकते हैं। अब रहे भावसे देखकर भी उसे दया नहीं आती, जिससे वह हमारा होनेवाले अधिकारी। श्रीमद्भागवतमें बतलाया है कि दु:ख दूर नहीं कर सकता। इसी प्रकार सुहृद् भी हो अर्थात् दया भी हो और समर्थ भी हो, पर हमारे दु:खको कोई भी कामना न हो या सभी तरहकी कामना हो न जानता हो तो भी काम नहीं होता। तथा सुहृद् और अथवा केवल मुक्तिकी ही कामना हो, तो भी श्रेष्ठ सर्वज्ञ हो पर समर्थ न हो तो वह भी हमारे दु:खको बुद्धिवाला मनुष्य तीव्र भक्तियोगसे परम पुरुष भगवान्की जानकर भी दु:ख दूर नहीं कर सकेगा; क्योंकि उसकी ही पुजा करे-दु:खनिवारणकी सामर्थ्य ही नहीं। किंतु भगवान्में अकामः सर्वकामो वा मोक्षकाम उदारधीः। उपर्युक्त तीनों बातें एक साथ एकत्रित हैं। भक्तियोगेन यजेत पुरुषं परम्॥ उन सर्वसुहृद्, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् भगवान्पर ही (२1३1१०) यहाँ 'अकाम' से ज्ञानी भक्त, 'मोक्षकाम' से जिज्ञासु निर्भर होकर जो उनकी भक्ति करता है, वही भक्त है। भगवान्की भक्तिके अधिकारी सभी तरहके मनुष्य हो तथा 'सर्वकाम' से अर्थार्थी और 'उदार धी' से आर्त भक्त समझना चाहिये। ज्ञानी भक्त वह है, जो भगवान्को तत्त्वत: सकते हैं। भगवान्ने गीताके नवें अध्यायके ३०वें, ३२वें और ३३वें श्लोकोंमें बतलाया है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, जानकर स्वाभाविक ही उनका निष्कामभावसे नित्य-निरन्तर वैश्य, शूद्र, पापयोनि, स्त्री और दुराचारी—ये सातों ही भजन करता रहता है। जिज्ञासु भक्त उसका नाम है, जो मेरी भक्तिके अधिकारी हैं। भक्तितत्त्वको जाननेकी इच्छासे उनका भजन करता है। अर्थार्थी भक्त वह होता है, जो भगवान्पर भरोसा करके अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्। उनसे ही संसारी भोग-पदार्थींको चाहता है और आर्त साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥ भक्त वह है, जो संसारके कष्टोंसे त्राण चाहता है। मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः। गीतामें इन्हीं भक्तोंके सकाम और निष्काम भावोंकी स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्॥ किं पुनर्जाह्मणाः पुण्या भक्ता राजर्षयस्तथा। तारतम्यतासे चार प्रकार बतलाये हैं-चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन। 'यदि कोई अतिशय दुराचारी भी अनन्यभावसे मेरा भक्त होकर मुझको भजता है तो वह साधु ही माननेयोग्य आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ॥ है; क्योंकि वह यथार्थ निश्चयवाला है—अर्थात् उसने (७।१६) भली-भाँति निश्चय कर लिया है कि परमेश्वरके 'हे भरतवंशियोंमें श्रेष्ठ अर्जुन! उत्तम कर्म करनेवाले भुनाक्ष्रिपांत्रमान Dissord semver का प्रकार (dsc.gg/dharman), अति निज्ञास निक्र कि अस्ति कि कि स्वाप्त के अस्ति कि स्वाप्त कि स्वाप्त के अस्ति क 'प्रकट हुए प्रभु कारागृहमें कृष्ण अतुल ऐश्वर्य निधान'

# ( श्रीअर्जुनकुमारजी बन्सल )

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत। सहसा ही स्वर्गलोकमें देवता दुन्दुभी बजाकर हर्ष व्यक्त

करने लगे। कारागृह प्रकाशित हो उठा। माता-पिताके अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥ हाथ-पैरोंकी हथकड़ी और बेड़ी स्वयं ही खुल गयीं।

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्। धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥

कुरुक्षेत्रकी रणभूमिमें श्रीकृष्णने अर्जुनको उपदेश

देते हुए यही तो कहा था।

साधुजनों का परित्राण अति दुष्टों का करने निस्तार।

धर्मस्थापन-हेतु स्वयं प्रभु ने यह लिया दिव्य अवतार॥

हरने को निज प्रेमी विरही जन का घोर विरह संताप।

प्रेम-धर्म संस्थापनार्थ शुचि इच्छामय प्रगटे प्रभु आप॥ इस संसारमें जब-जब कहीं भी अधर्मकी विष-बेल

फैलती है और धर्मकी हानि होने लगती है, उस समय

साध्-सन्तों और अपने प्रेमी भक्तोंकी रक्षा करने और

अधर्मियोंका संहारकर धर्मकी पुनर्स्थापनाके लिये प्रभु स्वयं इस धराधामपर प्रगट होते हैं। उनका यह संकल्प

उस समय साकार हुआ, जब मथुराके राजा कंसद्वारा किये जा रहे पाप-पूर्ण अत्याचारोंसे धरतीमाता काँप उठी थी। उस समय प्रभुने अपने भक्तोंकी रक्षाहेतु मानव-देह धारणकर

इस देव-भूमिमें प्रकट होनेका निश्चय किया। भाद्र असित अष्टमी अजनजन्मर्क्ष रोहिणी शुभ नक्षत्र।

मध्यरात्रि बुधवार छा गयी प्रभा सुखद अनुपम सर्वत्र॥ सहसा सुर दुन्दुभी बज उठी स्वर्ग लोक में अपने आप।

सुनकर जन्म अजन्मा का सुर हर्षित हुए मिटा संताप॥ खुली हथकड़ी बेड़ी श्रीवसुदेव देवकी की तत्काल।

देख अलौकिक तेज पुंज अद्भुत बालक हो गये निहाल॥

और यह निश्चय उस समय साकार हो उठा जब भाद्रपद कृष्ण अष्टमी बुधवारकी अर्धरात्रिका शुभ समय आया, जब प्रभुको प्रकट होना था। सारे ग्रह-नक्षत्र

अनुकूल हो गये। मथुरास्थित कंसके कारागारमें श्रीवसुदेवजी

और देवकीजी बन्दी जीवन व्यतीत कर रहे थे। उस रात्रि

विष्णु रूप भुज चार शंख शुभ गदा चक्र अम्बुज अभिराम। शोभित श्याम नील सुन्दर तन पर पीताम्बर दिव्य ललाम॥

(पद-रत्नाकर)

समा रहे।

सिर पर मुकुट पीत उपरेना, भृगु-पद-उर भुज चारि धरे।

पूरव कथा सुनाइ किह हिर तुम माँग्यौ इहि भेष करे।।

छोरे निगड़ सोआए पहरू द्वारै कौ कपाट उघर्यौ। तुरत मोहि गोकुल पहुँचावहु यह कहिके सिसु रूप धर्त्यौ॥

श्रीभगवान्के ऐसे अद्भृत स्वरूपको निहारकर माता

ऐसे शुभ समयमें श्रीदेवकीजीके आठवें पुत्ररूपमें

एक अद्भुत बालकका प्राकट्य हुआ। यह कोई साधारण

बालक नहीं, अपितु स्वयं भगवान् विष्णु ही थे। इनके कमलके समान नेत्र थे, चार भुजाएँ थीं, जिनमें शंख,

चक्र, गदा और पद्म शोभित थे। इनके अद्भुत रूपको

निहारकर माता-पिता प्रेम-विभोर हो स्तुति करने लगे।

विद्याधर किन्नर कलोल मन उपजावत मिलि कंठ अमित गति।

गावत गुन गंधर्व पुलिक तन नाचित सब सुर नारि रिसक अति॥

बरषत सुमन सुदेश सूर सुर जय-जयकार करत मानत रित।

सिव विरंचि इन्द्रादि अमर मुनि फूले सुख न समात मुदित मित॥

करते हुए गन्धर्वींके साथ मिल भगवान्का गुणगान करने लगे। प्रेमके वशीभृत हो देवांगनाएँ नृत्य और गायन

करने लगीं। गगनमण्डलमें एकत्रित समस्त देवगण

भाँति-भाँतिके सुवासित पुष्पोंकी वर्षा करने लगे। भगवानुके

अवतारके इस रूपमें दर्शनकर शंकरजी, ब्रह्माजी और

इन्द्रादि देवता तथा ऋषि-महर्षि प्रसन्नतासे फूले नहीं

देवकीजी चिकत होकर श्रीवसुदेवजीको संकेतकर कहने लगीं,

देखहुँ आइ पुत्र-मुख काहे, न ऐसी कहुँ देखि न दई।

आकाशमण्डलमें देवता अपनी प्रसन्नता व्यक्त

तब बसुदेव उठे यह सुनतिहं हरषवंत नंद भवन गये।

[भाग ९३

(सूरसागर)

बालक धरि लै सुरदेवी कौ आइ सूर मधुपुरी ठए।। (सूरसागर)

संख्या ८ ] 'प्रकट हुए प्रभु कारागृहमें कृष्ण अतुल ऐश्वर्य निधान' १९		
ने पनिनेन। यहाँ याना पाप पाना समार पान ना	**************************************	
हे पतिदेव! यहाँ आकर अपने पुत्रका मुख क्यों नहीं देख लेते? ऐसा रूप न तो कहीं देखा है और न	बँध गये। कारागारको यथास्थिति देख द्वारपाल सन्तुष्ट	
•	हो अपने स्थानपर बैठ गये। कुछ ही पल बीते थे कि	
ही कभी सुना है। इनके शीशपर मोर-मुकुट, तनपर	द्वारपालोंने अन्दरसे एक शिशुके रोनेकी आवाज सुनी।	
पीताम्बर, हृदयपर भृगु ऋषिके पदचिहन शोभायमान हैं।	उन्होंने तत्काल ही इसकी सूचना राजा कंसको दे दी।	
प्रभुने पूर्वजन्मोंका परिचय देकर शिशुरूप धारणकर	कारागारमें पहुँच कंसने वह कन्या देवकीके	
कहा, देखो इस समय सारे प्रहरी अचेत-अवस्थामें सो	हाथोंसे छीन ली। अपने दोनों हाथोंसे कन्याको जैसे ही	
गये हैं। कारागारके सारे द्वार भी खुल गये हैं। शिशुरूप	शिलापर पटककर हत्या करनेकी चेष्टा की, वह कन्या	
भगवान्ने अपने पिता वसुदेवजीको सम्बोधितकर कहा,	उसके हाथोंसे छूटकर आकाशमें जाकर स्थिर हो गयी	
मुझे तुरंत ही गोकुल पहुँचा दो। इतना सुनकर,	और वहींपर उसने अष्टभुजी देवीका रूप धारण कर	
प्रिय शिशु को ले गोद प्यार से चले पिता वसुदेव सचेत।	लिया। कंसको संकेतकर उसने कहा—रे मूरख! तेरा	
यमुना ने कर पद स्पर्श दे दिया मार्ग उनको सुखयोग।	मारनहार तो ब्रजमें जन्म ले चुका है।	
पहुँचे नंद-भवन देखे सब खुले द्वार सोये सब लोग॥	उधर गोकुलमें नन्दबाबाके भवनमें लालाका	
सुला दिया शिशु को धीरे से तुरत यशोदा जी के पास।	जन्मोत्सव बड़ी धूमधामसे मनाया जाने लगा। गोकुलकी	
खोये निधि ज्यों ले कन्या को चले उदास भरे उल्लास॥	एक गोपी अपनी एक सखीसे कहने लगी, री सखी,	
पहुँचे कारागृह तुरत ही हुए बंद अपने सब द्वार।	हों इक नई बात सुनि आई।	
(पद-रत्नाकर)	महरि जसोदा ढोटा जायौ घर घर होति बधाई॥	
शिशुरूप भगवान्को गोदमें ले जैसे ही वसुदेवजी	द्वारैं भीर गोपि-गोपिनि की महिमा बरनि न जाई।	
कारागृहसे बाहर आये, उन्होंने देखा, आकाशमें कारे-	अति आनन्द होत गोकुल में रतन भूमि सब छाई॥	
कजरारे बदरा छाये हुए हैं, उनके मध्यसे बिजली चमक	नाचत वृद्ध तरुन अरु बालक गोरस कीच मचाई।	
रही है, अल्पकालमें वर्षा भी होने लगी, यमुनाकी जलधारा	सूरदास स्वामी सुख सागर सुन्दर स्याम कन्हाई॥	
वेगवती हो उठी। उसकी ऊँची उठती जल-तरंगें जैसे	मैंने सुना है, मैया यशोदाने एक पुत्रको जन्म दिया	
अपने प्रभुके चरण-स्पर्श करनेको व्याकुल हों, निश्चित	है। प्रसन्नताके इन क्षणोंमें घर-घरमें बधाइयाँ गायी जा	
ही ऐसा हुआ, यमुनाकी एक लहरने प्रभुके चरण-स्पर्शकर	रही हैं। नन्द-भवनके द्वारपर गोप-गोपियोंकी भारी भीड़	
अपनेको धन्य कर लिया। ऐसी अवस्थामें शेष भगवान्ने	जमा है। सारे गोकुलमें चारों ओर आनन्द-ही-आनन्द	
प्रभुके रक्षार्थ अपने फनोंको उनके ऊपर फैला दिया।	छाया हुआ है। बालक, युवा और वृद्ध नर-नारियाँ नृत्य	
निश्चिन्त होकर श्रीवसुदेवजीने उफनती नदीमें प्रवेश किया	और गायनसे अपनी खुशी व्यक्त कर रहे हैं।	
और धैर्य धारणकर रवितनयाको पार करने लगे। भगवान्के	इतना सुनकर शान्त बैठी वह गोपी कहने लगी, री	
चरण-स्पर्श करनेकी कामना पूर्ण होनेके कारण कालिन्दीने	सखी, तुमने तो केवल सुना है, मैंने तो अपनी आँखोंसे	
श्रीवसुदेवजीको गोकुल जानेका मार्ग प्रशस्त कर दिया।	नन्दभवनका आनन्द देखा है।	
यमुना पारकर वसुदेवजीने गोकुलमें प्रवेशकर नन्द-	हे सखी! हमें भी उस आनन्दकी अनुभूति कराओ।	
भवनमें जाकर देखा, वहाँ भी सब लोग निद्रामें लीन थे।	आओ सखी सुनो—	
वसुदेवजीने देखा, यशोदा मैयाकी बगलमें एक नवजात	आज नन्द के द्वारैं भीर।	
कन्या लेटी है। वसुदेवजीने शीघ्रतासे अपने पुत्रको वहाँ	इक आवत इक जात बदा है इक ठाढ़े मन्दिर कै तीर॥	
लिटा दिया और कन्याको अपनी गोदमें ले मथुराके	कोउ केसरि कौ तिलक बनावित कोउ पहिरति कंचुकी सरीर।	
कारागारमें आ गये। उनके हाथ-पैरोंके बन्धन स्वतः ही	एकिन कौं गोदान समर्पत एकिन कौं पहिरावत चीर॥	

दर्शनार्थ उनके स्नेहीजनोंके आनेका ताँता लगा हुआ था। एकिन कौं भूषन पाटंबर एकिन कौं जु देत नग हीर। ब्रजगोपियाँ अपना पूर्ण शृंगार करके आयी हैं। वहाँ गोप-

भाग ९३

ग्वाले भी भारी संख्यामें आये हैं। इस अवसरपर नन्दबाबाने एकिन मथें दुध रोचना एकिन कौं बोधित दै धीर। विभिन्न प्रकारके आभूषण, बहुमूल्य हीरे-मोती, सुन्दर-सुरदास धनि स्याम सनेही धन्य जसोदा पुण्य सरीर॥

सुन्दर वस्त्र और गोदानकर सबको सम्मानपूर्वक विदा किया। सुरदासजीने आनन्दके इन दुर्लभ क्षणोंको अपने शब्दोंकी मालामें पिरोते हुए सखीके माध्यमसे वर्णन किया आज नन्दबाबा और यशोदा मैया ही नहीं, लाला-है, हे सखी! मैंने देखा नन्दभवनके बाहर श्रीकृष्णके जैसे लालको पाकर सारा ब्रजमण्डल ही धन्य हो गया।

- सत्यका मूल्य

एकिन कौं पुहुपनि की माला एकिन कौं चन्दन घिस नीर॥

## डॉ॰ विधानचन्द्र राय पश्चिम बंगालके मुख्यमन्त्री रह चुके हैं। व्यवसायसे डॉक्टर होनेपर भी उनको

राजनीतिसे बड़ा प्रेम था। वे जब विद्यार्थी थे, उस समय भी वे बड़े तेजस्वी थे। इतना होनेपर भी वे कॉलेजके तीसरे वर्षमें अनुत्तीर्ण हो गये। इतने तेजस्वी एवं मेधावी होनेपर भी वे अनुत्तीर्ण कैसे हुए, इसका कारण जाननेकी स्वाभाविक ही जिज्ञासा होती है। प्रतिवर्ष प्रथम श्रेणीमें उत्तीर्ण होनेवाला विद्यार्थी अकस्मात्

अनुत्तीर्ण हो जाय, यह सचमुच आश्चर्यजनक घटना थी।

जिस कॉलेजमें वे अध्ययन कर रहे थे, उसीके फाटकके समीप एक दिन कॉलेजके प्राध्यापक

महोदयकी मोटरसे एक दुर्घटना हो गयी। प्राध्यापक महोदयके द्वारा घटित हुई मोटर चलानेकी भूलका ही

एक वर्ष बच जाता।'

यह परिणाम था। उस समय विद्यार्थी विधानचन्द्र वहाँ खड़े थे। पुलिसने आकर घटनास्थलकी जाँच की और जो-जो वहाँ उपस्थित थे, उनके नाम लिख लिये। विधानचन्द्रका नाम भी लिखा गया।

अदालतमें प्राध्यापकके ऊपर केस चला और विधानचन्द्र साक्षीके रूपमें न्यायालयमें उपस्थित हुए। विधानचन्द्र बचपनसे ही बड़े सत्यवादी थे। अतः अपने ही प्राध्यापकके विरुद्ध उन्होंने सच-सच बात कह

दी। परिणाममें प्राध्यापककी असावधानी मानी गयी और उनपर जुर्माना हुआ।

इस प्रकार दण्डित होनेपर प्राध्यापक महोदयको बहुत बुरा लगा। अपना ही विद्यार्थी अपने विरुद्ध

साक्षी देकर उन्हें अपराधी घोषित कराये - इस बातसे उनके मनमें रोष हुआ और उन्होंने इस बातकी अपने

मनमें गाँठ बाँध ली। कुछ दिनों पश्चातु परीक्षाके समय प्राध्यापकने अपने विषयमें विधानचन्द्रको बहुत

कम अंक देकर उन्हें अनुत्तीर्ण कर दिया। विधानचन्द्रको अपने अनुत्तीर्ण होनेका कारण ध्यानमें तो आ गया, पर वे चुप रहे और दूसरे वर्षमें वे प्रथम श्रेणीमें उत्तीर्ण हो गये।

कुछ दिनोंके बाद जब उन प्राध्यापक महोदयकी विधानचन्द्रसे भेंट हुई, तब उन्होंने प्रश्न किया—

'विधानचन्द्र! गतवर्ष अनुत्तीर्ण होनेका कारण तुम जानते हो?' 'जी हाँ, महाशयजी!' विधानचन्द्रने निडरतासे उत्तर देते हुए कहा—'आपने जान-बूझकर अपने विषयमें

कम अंक देकर मुझे अनुत्तीर्ण कर दिया था; क्योंकि मैंने न्यायालयमें आपके विरुद्ध साक्षी दी थी।' 'तो जानते हुए भी तुमने ऐसी चेष्टा क्यों की ?' प्राध्यापक बोले। 'मेरे पक्षमें गवाही दी होती तो तुम्हारा

'श्रीमन्' विधानचन्द्रने सहजभावसे कहा—'जीवनके एक वर्षसे मेरी समझमें सत्य बोलनेका मूल्य कहीं

अधिक है।'  संख्या ८] संत-स्मरण संत-स्मरण ( परम पूज्य देवाचार्य श्रीराजेन्द्रदासजी महाराजके गीताभवन, ऋषिकेशमें हुए प्रवचनसे साभार ) 🔹 मध्यप्रदेशके एक गाँवमें चतुर्भुजभगवानुका मन्दिर लेकर महलको लौट आये और पण्डितोंसे उस ईंटपर है। महाराजजीका अपने गुरुदेवके साथ वहाँ जाना होता लिखी पंक्तिका अर्थ पूछा। कोई बता नहीं पाया। था। वहाँ पूर्ण शौचाचारपूर्वक भगवान्की सेवा-पूजा होती संयोगसे एक भ्रमणकारी संत राज्यमें पहुँचे और पूरी बात है। उस मन्दिरके पुजारीकी वृद्धा माताजी, जो सेवा-पूजामें जानकर उन्होंने राजाको बताया कि उस ईंटपर यह सहयोगिनी थीं, एक बार अँधेरेमें गिर गयीं और उनका वाक्य उनका ही लिखा हुआ है। उस वनमें बावड़ीपर कुल्हा टूट गया। उन्हें ठाकुरजीकी सेवा न कर पानेका एक संतसे उनकी भेंट हुई थी और दो घड़ी सत्संग हुआ, बड़ा क्लेश रहता था और वे उन्हें कठोर शब्दोंमें उलाहना भगवच्चर्चा हुई। उसी समय वहाँ पड़ी ईंटपर उन्होंने देती रहती थीं। एक दिन वे वृद्ध माताजी अत्यन्त सबेरे-लिख दिया कि यहाँ हम दो घड़ी जीवित रहे। वस्तुत: सबेरे घिसटती हुईं किसी तरह मन्दिरतक पहुँच गयीं, जीवनकी सार्थकता सत्संगमें ही होती है और सत्संग गर्भगृहका ताला खोला और अन्दरसे बन्द कर दिया। भगवत्कृपासे ही प्राप्त होता है, प्रयत्न या भाग्यसे नहीं। इधर उनके पुत्र पुजारीजी जब नित्यकी तरह मन्दिर पहुँचे 🔹 निम्बार्क-सम्प्रदायके संत श्रीभट्टदेवाचार्यजी तो गर्भगृहको अन्दरसे बन्द देखकर चोरी आदिकी आशंका महाराजके पास व्रजसे एक विप्र बालक आया और करने लगे। दरवाजा पीटनेपर अन्दरसे वृद्धा माताजीने पुकारकर दीक्षा देनेकी प्रार्थना की। महाराजजीने उससे कहा कि कहा, ठहरो खोलती हूँ और ऐसा कहकर वे सामान्य अभी तुम्हें हमारा दर्शन नहीं हुआ है, दीक्षा कैसे दें? स्वस्थरूपसे चलकर दरवाजेतक आयीं और दरवाजा खोल वह कुछ समझा नहीं। महाराजजीने पूछा—हमारेमें कोई दिया। उन्हें टूटे कूल्हेकी पीड़ासे मुक्त देखकर सब विशेषता दीख रही है ? उसने कुछ कहा नहीं। महाराज बोले कि अभी दर्शनकी योग्यता नहीं आयी है, अत: आश्चर्यचिकत थे। पूछनेपर उन्होंने अपनी सहज ग्रामीण भाषामें बताया कि मैं आज चतुर्भुजभगवान्से लड़ाई करने युगल नाम लेते हुए गिरिराजजीकी १२ वर्ष परिक्रमा आयी कि इन्होंने मेरा कूल्हा क्यों तोड़ दिया? मैंने इनको करो। परिक्रमामें ही निवास करो। उसने वैसा ही किया। कह दिया कि इसे ठीक कर दो ,नहीं तो मैं तुम्हारा कुल्हा लौटकर आया और वहीं प्रश्न पूछनेपर कहा कि आपके तोड दुँगी। मैंने चन्दनवाला चकला उठाया भी था, तभी स्वरूपसे भगवत्प्रेम बरस रहा है। पुनः १२ वर्ष उन्होंने मेरी कमरपर हाथ फेरकर कूल्हा जोड़ दिया। मैं गिरिराजजीकी शरण लेनेकी आज्ञा हुई। वह गया और चंगी हो गयी। इस प्रसंगके सम्बन्धमें पूछनेपर भक्तमालीजी फिर वही साधना करके लौटकर आया तब पुन: प्रश्न महाराजने बताया कि हम लोग प्राय: भगवान्की मूर्तिमें हुआ-हमारेमें क्या दीखता है? उसने कहा-आपका पाषाण अथवा काष्ठबुद्धि नहीं छोड़ पाते। उस वृद्धा देह प्राकृत नहीं दीखता, सच्चिदानन्दमय प्रतीत होता है। माताजीकी उस मूर्तिमें दृढ़ भगवद्बुद्धि थी, इसलिये यह पुन: १२ वर्षके लिये गिरिराजजी जानेकी आज्ञा हुई। साक्षात् कृपा-परिणाम हुआ। इस बार लौटकर आये तो पूछनेपर कुछ कह नहीं पाये, 🕏 भक्तमालीजी बताते थे। राजस्थानके एक राजा नेत्रोंसे अश्रुधारा बहती रही। उन्हें महाराजकी गोदमें बैठे आखेटको वनमें गये। वहाँ बावड़ीपर जल पीया। जल युगल-सरकारकी छिब दीख रही थी। महाराजने प्रेमपूर्वक पीते समय पासमें पड़ी एक ईंटपर नजर गयी तो उसपर दीक्षा दी। वे महापुरुष हरिव्यास देवाचार्यके नामसे लिखा था—'यहाँ हम दो घडी जीवित रहे।' राजा ईंट विख्यात हुए।—'प्रेम'

विश्वम्भर सबको सँभालता है प्रेरक-प्रसंग— अपने उत्तर भारतके प्रवासकालमें स्वामी विवेकानन्द आया?' मध्याहनमें एक छोटे-से स्टेशनपर रेलगाड़ीसे उतरे। स्वामीजीने कहा—'भाई! मैं तो तुम्हें पहचानता नहीं, कदाचित् तुम किसी दूसरेके लिये भोजन लाये हो।' उनके पास कपड़ेके रूपमें कौपीनके अतिरिक्त कुछ भी नहीं था। साथमें पीनेका पानीतक नहीं था। बड़े जोरकी स्वामीजीकी बातके बीचमें ही वह बोल उठा-लु चल रही थी। प्लेटफार्मपर वे एक वृक्षकी छायामें 'नहीं महाराज! यह भोजन तो मैं आपके लिये ही बैठने गये, पर वहाँसे उठा दिये जानेपर एक खंभेका लाया हूँ। मैं देख रहा हूँ कि वे आप ही हैं, जिनके लिये मैं भोजन लाया हूँ।' सहारा लेकर बैठ गये। सामने ही एक बनिया एक छप्परमें दरी बिछाकर स्वामीजीने फिर कहा-'तुम मुझे अच्छी तरह बैठा था। उसने स्वामीजीके साथ ही गाड़ीमें यात्रा की देख लो।' थी। यात्राकालमें स्वामीजीके पास पैसा न होनेसे वे आगन्तुक सज्जनने उत्तर दिया—''देखिये स्वामीजी! पानीतकके लिये त्रस्त रहे, उनका शरीर प्याससे जल रहा था। बनिया तो बीचमें प्रत्येक स्टेशनपर ठंडा पानी मँगवाकर पीता रहा और स्वामीजीसे कहता रहा— 'हे साधु भाई! देखों, मैं कितना ठंडा पानी पी रहा हूँ। अगर तुम मेहनत करके पैसा कमाओ तो इसी तरह ठंडा पानी और सुस्वाद भोजन मिलता रहेगा।'

अब वही बनिया स्वामीजीके सामने छप्परमें बैठकर

'देखो बाबाजी! मैं किस तरह लड्डू, पूड़ी, जलेबी

यों बोलते-बोलते वह हँसने लगा। उसकी ऐसी

इसी बीच भगवान्की कृपासे एक हलवाई आता

हुआ दीख पडा। उसके एक हाथमें पोटली थी, दूसरे

हाथमें जलपात्र तथा बगलमें दरी थी। जल्दी-जल्दी आकर

उसने जलपात्र और पोटली नीचे रख दिया एवं वृक्षकी छाँहमें दरी बिछाकर हाथ जोडकर स्वामीजीसे कहा—

'मुझे भोजन देनेवाला यह ईश्वरभक्त कहाँसे निकल

'बाबाजी! पधारिये और भोजन कर लीजिये।'

स्वामीजी आश्चर्यसे देखते रहे। उन्होंने सोचा—

उनका मजाक उड़ा रहा था। जब वह दरी बिछाकर मौजसे

भोजन करने लगा, तब स्वामीजी थोड़े आड़में पड़ गये।

आदिका मजा ले रहा हूँ और आरामसे छाँहमें बैठा हूँ।

धृष्टता देखकर भी स्वामीजी चुपचाप बैठे रहे।

फिर भी वह उनको सुना-सुनाकर कहने लगा—

तुम भूखसे तडप रहे हो।'

में आपसे अपने साथ घटी घटना बताता हूँ। इस स्टेशनपर मेरी दूकान है। मैं हलवाई हूँ। अभी थोड़ी देर पूर्व मेरी आँख लग गयी थी, तब स्वप्नमें मुझे श्रीरामजीके दर्शन हुए। आपका भी दर्शन कराते हुए उन्होंने कहा—'मेरा यह भक्त पिछले दिनसे भूखा है। उसके लिये जल्दीसे पूडी और साग तैयार कर लो तथा जाकर उसको भोजन कराओ। साथमें ठंडा पानी भी लेते जाओ; क्योंकि इस समय ठंडा पानी नहीं मिलता।' इसी बीचमें मेरा स्वप्न टूट गया और मैं श्रीरामजीकी आज्ञाके अनुसार पूड़ी और साग बनाकर तथा थोड़ी ताजी मिठाई रखकर ले आया हूँ। आप भोजन कर लीजिये।'' स्वप्नकी बात सुनकर तथा भगवान्के सौहार्दका स्मरण करके स्वामीजीके नेत्र भर आये। वे चुपचाप बैठ गये और भगवान्का भेजा हुआ प्रसाद पाने लगे। दूर बैठा बनिया यह सब देखकर आश्चर्यचिकत हो गया। उसे अनुभव हुआ—'मैंने स्वामीजीके साथ अभद्र व्यवहार किया है, अपनी अभद्रताके लिये मुझे उनसे क्षमा माँगनी चाहिये।' वह स्वामीजीके पास आया और उनके चरणोंपर गिर पडा तथा अपने अभद्र व्यवहारके लिये क्षमा माँगने लगा। इतना ही नहीं, उसने स्वामीजीके चरणोंकी धूल लेकर अपने मस्तकपर चढ़ायी। स्वामीजीके मनमें तो कुछ था ही नहीं। वे तो विश्वम्भरकी वत्सलताका स्मरण करके गद्गद हो रहे थे।

असफलताकी कडवाहटमें संख्या ८ ] असफलताकी कड़वाहटमें ( ब्रह्मचारी श्रीत्र्यम्बकेश्वरचैतन्यजी महाराज, अखिलभारतवर्षीय धर्मसंघ ) भी गलत दिशामें सोच रहे हैं। सावधानीमें कमी, मानव-जातिके इतिहासमें एक भी ऐसा उदाहरण नहीं मिलेगा, जिसमें किसी मानवने अपने जीवनमें कभी असफलता अथवा बुरा समय हमें हमारे सच्चे अस्तित्वका, शत्रु-मित्रका, अपने-परायेका, धैर्य-अधैर्यका ज्ञान कराते असफलताका स्वाद न चखा हो। अन्तर मात्र इतना है कि कमजोर सोचके लोग असफलताको मृत्युतुल्य हैं। असफलता अनुभव देकर जाती है। असफलता आत्मविश्लेषणका आत्मकेन्द्रित स्वाध्यायकाल है। मानकर विषादके दलदलमें अपने उत्साहको नष्ट करके अश्रु गिराते थककर बैठ जाते हैं, जबकि मजबूत मत घबरा पतझड़ से मानव, धीरज धर ऋतुराज आ रहा। इरादोंके लोग अपनी असफलताओंसे भी सीखकर दोगुने नहीं ठहरती निशा निराशा, सूरज ये अरुणाभ आ रहा॥ उत्साहसे उमंगपूर्वक पुनः लक्ष्य प्राप्तिहेतु सिक्रय हो किसीने नैराश्यकी कालिमासे ग्रस्तजनोंको नवप्रभातके जाते हैं। किसी वैदेशिक विचारकने कहा है कि आगमनकी बात कह आश्वस्त किया है— असफलताका मतलब ये नहीं कि आप फेल हैं, अपितु गम की अँधेरी रात में मन को न मायूस कर। आप अभीतक सफल नहीं हुए हैं, बस। (Failure सुबह तो आयेगी जरूर सुबह का इंतजार तो कर॥ doesn't mean you are a failure, it just means you (If winter comes, can spring be far behind?) haven't succeeded yet.) पुनः नीतिकार कहते हैं-अर्थात् घबरा मत, ये सर्दी आयी है तो क्या वसन्त कहीं यत्ने कृते यदि न सिद्ध्यिति कोऽत्र दोषः॥ दूर पीछे रह सकेगा? नहीं-नहीं ये परिवर्तनशील हैं, यहाँ दो धारणाएँ हैं, एक नकारात्मक दूसरा धूप-छाँवकी तरह, दिन-रातकी तरह। इनको सहन करना ही चाहिये। भगवद्गीतामें भगवान् श्रीकृष्ण कहते सकारात्मक। जो लोग असफल होनेपर परिस्थिति, देश, काल, संसाधन तथा भाग्यके ऊपर दोषारोपण करके हैं-हे अर्जुन! स्वयंको बचानेका प्रयास करते हैं, वे कहते हैं कि मैंने आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व तो पूरा प्रयास किया, काम न बना तो इसमें क्या दोष ये आने-जानेवाली परिस्थितियाँ हैं। इनसे घबराकर है ? ये नकारात्मकता है, जबिक असफल होनेपर भी भागना कोई समाधान नहीं है, अपितु इनका सामना करते हुए ही आप पार जा सकते हैं। भयके कारणकी खोजमें सकारात्मक सोचवाला व्यक्ति विचार करता है, सूक्ष्म बढ़ो, भय नहीं रहेगा; क्योंकि वस्तुत: भय है ही नहीं, निरीक्षण करता है कि प्रयास करनेमें मेरी कमी कहाँ भ्रमके कारण आपको उसकी प्रतीतिमात्र होती है। रही? अत्र—इस कोशिशमें, दोष—कमी क्या रह गयी? सच बतायें, हमारी जिन्दगीमें सफलता अथवा असफलता हमारी स्थितिका सही बोध कराती है। असफलताका उतना महत्त्व नहीं, जितना कि आपके एक नाकारा नासमझ पाचक भोजनके बिगडनेपर ये कहे जीवनका उद्देश्य क्या है, इस बातका है। हमें याद कि मैंने मेरा काम ईमानदारीसे किया, थोड़ी कुछ आता है, आप भी जानते हैं, त्रेतायुगका मृतपशुमांसभोक्ता गडबडी हो गयी तो मैं क्या करूँ? मेरा क्या दोष? अधमाति-अधम गीधराज जटायु, उनको संसार छोडे परीक्षाफल विपरीत आनेपर परीक्षार्थी अथवा शिक्षक, बहुत समय बीत गया, परंतु वे आज भी वर्तमान हैं, प्रासंगिक हैं। जीवन्त हैं, चर्चाका विषय हैं, प्रेरणाके दुर्घटना हो जानेपर ड्राइवर, फसल ठीक न आनेपर किसान, सन्तानके बिगड़नेपर माता-पिता यदि ऐसा स्रोत हैं, आज भी उनके त्याग और बलिदानकी गाथा सुनकर बडे-बडे धीरोंके मस्तक श्रद्धासे नत हो जाते कहकर बचें कि हम क्या करें, तो समझना कि ये अब

भाग ९३ हैं। आँखें नम हो जाती हैं। जानते हैं क्यों? क्योंकि दिया, उनकी दासता स्वीकार कर ली, वे लोग राजिसंहासन उनका जीवन समाजको झकझोरकर पूर्ण हुआ। नारी बचा सके? क्या उनका सम्मान बच सका? सब जातिके सम्मानकी रक्षा करते-करते उन्होंने मृत्युका कालके गालमें विलीन हो गये, परंतु संघर्षकी ज्वाला आलिंगन किया। उनके पास बहाने हो सकते थे। जैसे जलानेवाले, उस महायज्ञमें आत्माहुति देनेवाले राणाप्रताप कि मैं बूढ़ा था, निहत्था था, पक्षी था, शक्तिहीन था, आज भी जीवन्त हैं। भाई! सोचो, जीवन किसका सो गया था, सुनायी नहीं दिया था, आँखोंसे दिखना सफल रहा, देख लेना जबतक हिन्दू रहेगा, भारतवर्ष रहेगा, तबतक राणाप्रताप प्रासंगिक रहेंगे। शिवाजी, गुरु कम हो गया था, अब पंखोंमें लड़ना तो क्या उड़नेकी शक्तितक नहीं रही इत्यादि। पर जटायुजीने इन सब गोविन्दसिंह, चन्द्रशेखर आजाद, सुभाषचन्द्र बोस आदि प्रतिकुलताओंकी चिन्ता किये बिना अत्याचार, अन्याय, अनेकों उदाहरण हैं। आतंकका पुरजोर विरोध किया। उफ! पक्षी होकर भी परीक्षामें असफल होनेपर, साक्षात्कारमें चयन न जटायुकी ऐसी उत्तम सोच, शिव-शिव! परंतु हाय! होनेपर, चुनावमें पराजित होनेपर, वैवाहिक जीवनमें हम मनुष्योंकी दशा क्या है, ये सोचकर कलेजा काँपने असन्तुलित होकर असफल होनेपर, व्यापारमें घाटा लगनेपर, मित्रद्वारा या अन्य सम्बन्धीद्वारा धोखा मिलनेपर लगता है। ये सच है कि उनको सफलता नहीं मिली, वे आक्रान्ता दशाननरूपी भेड़ियेके पंजेमें फँसी मृगीके अथवा कितना भी बुरे-से-बुरा हो जाय, उस समय जैसी छटपटाती माता सीताको नहीं बचा पाये, परंत् बिखरे बिना, रोये बिना, घबराये बिना, शान्त होकर उनका वह बलिदान, वह प्रयास आज भी आलोकका एकान्तमें बैठो, झंझावातभरी इस तूफानी उफनती जीवन-कार्य कर रहा है, आप ही सोचना कि क्या उस नदीमें खुदकी डगमगाती आत्मविश्वासरूपी नौकाको दण्डकवनमें जहाँ ये घटना घट रही थी, ऋषि, महर्षि, देखो, स्वयं ही स्वयंको देखो। देखते-देखते खुदसे एक महात्मा, सन्त, वनवासी, भील, कोल, आभीर नहीं रहे प्रश्न करो। दर्पणमें खुदको देखकर पूछोगे तो और अच्छा होगा। शान्त भावसे अपने-आपसे पूछो कि क्या होंगे। वनदेवी, वनदेवता नहीं रहे होंगे। ये अवश्य थे, परंतु हाय रे भय! हाय रे नाशवान् जीवनको शाश्वत में दुनियामें पहला व्यक्ति हूँ, जिसके साथ ये परिस्थिति समझनेका भ्रम! इस भयके कारण तब भी और आज बनी है? क्या इससे पहले किसी और इन्सानके भी अन्यायी, अत्याचारी, आतंकी मुद्रीभर होनेपर भी जीवनमें ऐसा कष्ट नहीं आया? उत्तरको सँभालकर नीति-न्याय और विनम्रताका उपहास उडाते हैं और मनमें रखो, शान्ति मिलेगी; क्योंकि आपके जहनमें समाज तमाशबीन बना देखता रहता है। एक और उत्तर आयेगा कि न तो मैं पहला व्यक्ति हूँ, जिसके उदाहरण—क्या महाराणाप्रतापको अपने अभियानमें साथ ये घटना घट रही है, न ही मैं अन्तिम व्यक्ति हूँ। ये सब खेल करोड़ोंके साथ हुए, करोड़ों बार हुए। तब सफलता मिली? नहीं न, क्या महारानी लक्ष्मीबाईको घबराहटसे समाधान न निकलेगा, आँसू गिराना समाधान सफलता मिली? असंख्य उदाहरण हैं, महाराणा प्रताप भारतमाताके स्वाभिमान-सम्मानकी सुरक्षाहेतु जंगलमें नहीं है। उठो, समग्र शोक, चिन्ता, निराशाको झटककर रहना स्वीकार करते हैं। घासतककी रोटी खाते, भूखे-उतार फेंको और आत्मविश्वासकी डगमगाती नौकाको बिलखते बच्चोंको देखकर भी वे पथसे न डिगे, ठीक धैर्यकी पतवारसे धीरे-धीरे सुरक्षित किनारे लगाओ। है वे चित्तौड, मेवाड न बचा पाये। तब क्या जिन फिर वसन्त आयेगा, फिर कोपलें, कलियाँ, फूल, फल राजघरानोंने अपनी मर्यादाको तिलांजलि देकर अपनी लगेंगे। ये जीवन-उपवन सैकड़ों पतझड़ों और वसन्तोंका बहुन-बेटियोंको तुच्छ स्त्रार्थको पूर्तिहेतु मुगलोंको सौंप साक्षी है। आप मुस्करावे रहो। Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Sha संख्या ८ ] वेदोंके महावाक्य वेदोंके महावाक्य (डॉ० श्री के०डी० शर्मा) मैं आपसे वेदोंके चारों महावाक्योंका रहस्य सुनना वेद हमारी संस्कृतिके मूल स्रोत हैं। वेदोंके भाष्यकार सायणाचार्यके अनुसार 'वेद वे ग्रन्थ हैं, जो चाहता हूँ।' भगवान् सदाशिव बोले—'हे ज्ञाननिधि अभीष्टकी प्राप्ति तथा अनिष्टको दूर रखनेका अलौकिक शुकदेवजी! मुने! तुम अत्यन्त बुद्धिमान् हो। तुमने वेदोंमें उपाय बताते हैं। मनुने अपने ग्रन्थ 'मनुस्मृति'में वेदके छिपे हुए, पूछनेयोग्य रहस्यको ही पूछा है, अत: महत्त्वको प्रतिपादित किया है—'वेदोऽखिलो धर्ममूलम्' 'रहस्योपनिषद्' नामसे प्रसिद्ध इस गृढ् रहस्यमय उपनिषद्का वर्णन किया जाता है, जिसको भली प्रकार जान अर्थात् समस्त धर्म वेदोंपर आधारित हैं। ऋग्वेद, विचारोंकी पवित्रताका वेद है, यजुर्वेद, कर्मोंकी पवित्रताका लेनेमात्रसे साक्षात् मोक्ष प्राप्त होता है, इसमें सन्देह नहीं। वेद है, सामवेद, उपासनाकी शुद्धताका वेद है तथा सभी महावाक्योंका उपदेश उनके षडंगके साथ ही करना चाहिये। जैसे चारों वेदोंमें उपनिषद्भाग (ज्ञानकाण्ड) अथर्ववेद, स्थितप्रज्ञताका वेद है। बृहदारण्यकोपनिषद्में वेदोंको 'ईश्वरका नि:श्वास' बताया गया है। अत: वेद शिर:स्थानीय अर्थात् सर्वोत्तम है, वैसे ही समस्त अपौरुषेय (मनुष्योंद्वारा नहीं रचित) हैं। वैदिक ऋषि उपनिषदोंमें यह 'रहस्योपनिषद्' सर्वोत्तम है। जिस मन्त्रद्रष्टा थे, मन्त्रसृष्टा नहीं थे अर्थात् उन्होंने मन्त्रोंका विद्वान्ने रहस्योपनिषद्में उपदिष्ट ब्रह्मका ध्यान किया है, साक्षात्कार किया था, मन्त्रोंकी रचना नहीं की थी। उसे पुण्यके हेतुभृत तीर्थस्थान, मन्त्रजप, वेद-पाठ तथा जपादिसे कोई प्रयोजन नहीं है। चारों महावाक्योंके वेदोंके ज्ञानकाण्डको उपनिषद् कहते हैं। वेदोंके अन्तिम भाग होनेके कारण उपनिषदोंको वेदान्त कहते अर्थको सौ वर्षीतक विचार करनेसे जो फल प्राप्त होता है, वह उनके ऋषि आदिका स्मरण तथा ध्यानपूर्वक हैं। उपनिषदोंको वेदशीर्ष भी कहा है। चारों वेदोंके चार महावाक्य प्रसिद्ध हैं। ऋग्वेदका एक बारके जपसे ही प्राप्त हो जाता है। अत: महावाक्य (१) 'प्रज्ञानं ब्रह्म' (ऐतरेयोपनिषद् ३।१।३) महावाक्योंद्वारा वेदान्त-सिद्धान्तको अच्छी तरहसे हृदयंगम अर्थात् ब्रह्म सिच्चदानन्द (सत्-चित्-आनन्द) स्वरूप करनेहेतु इन महावाक्योंकी व्याख्या की जाती है। है। यजुर्वेदका महावाक्य (२) **'अहं ब्रह्मास्मि'** प्रज्ञानं ब्रह्म—प्रथम महावाक्य (बृहदारण्यकोपनिषद् १।४।१०) अर्थात् ब्रह्मभावको यह ऋग्वेदका महावाक्य है तथा ऋग्वेदके उपनिषद् प्राप्त होनेवाले ब्राह्मणने अपनेको ही जाना कि 'मैं ब्रह्म 'ऐतरेयोपनिषद्' के तृतीय अध्यायके प्रथम खण्डके सामवेदका महावाक्य (३) **'तत्त्वमसि'** तृतीय मन्त्रके अन्तिम भागमें इस महावाक्यका उल्लेख (छान्दोग्योपनिषद् ६।८।७) अर्थात् 'हे श्वेतकेतो! है। इससे पूर्वके द्वितीय मन्त्रके अनुसार संज्ञान (चेतनता), वह परब्रह्म परमात्मा तू ही है।' अथर्ववेदका महावाक्य आज्ञान (प्रभुता), विज्ञान (कला आदिका ज्ञान), प्रज्ञान (४) 'अयमात्मा ब्रह्म' (माण्डूक्योपनिषद्, द्वितीय (समयोचित बुद्धि स्फुरित हो जाना-प्रतिभा), मेधा मन्त्र) अर्थात् 'यह आत्मा ब्रह्म है।' ये चारों महावाक्य (धारणा), दृष्टि, धृति, मित, मनीषा (मनन करनेकी आत्मा और परमात्माकी एकताका निरूपण करते हैं। शक्ति), जृति (रोगादिजनित दु:ख), स्मृति, संकल्प, इनके सदृश अन्य महत्त्वपूर्ण वाक्य भी हैं, परंतु ये चार क्रतु (अध्यवसाय), असु (प्राण), काम (तृष्णा) और महावाक्य प्रसिद्ध हैं तथा वेदोंके महावाक्य कहलाते हैं। वश (स्त्री-संसर्ग आदिकी कामना)—ये सभी प्रज्ञानके शुकरहस्योपनिषद्के अनुसार श्रीशुकदेवजीने भगवान् नाम हैं, अर्थात् जिसके द्वारा प्राणी देखता है, सुनता है, शिवसे प्रणवकी दीक्षा ग्रहण की और फिर भगवान् सूँघता है, वाणीद्वारा कहता है, रसज्ञान करता है, उसे शंकरसे प्रार्थना की—'हे देवाधिदेव! आप प्रसन्न हों। प्रज्ञान कहा गया है। ऐतरेयोपनिषद्के उपर्युक्त वर्णित

भाग ९३ तृतीय मन्त्रके अनुसार 'यह प्रज्ञानरूप आत्मा ही ब्रह्म है, ब्रह्मास्मि' (मैं ब्रह्म हूँ) कहा। यहाँ 'अहम्' शब्द जीवके लिये तथा 'ब्रह्म' शब्द ईश्वरके लिये प्रयुक्त हुए यही इन्द्र है, यही प्रजापित है। अग्नि आदि देव, पाँच महाभूत (पृथ्वी, वायु, आकाश, जल, तेज), अण्डज, हैं। ज्ञान और कर्मयोगकी पूर्णता प्राप्तकर जिज्ञास् जरायुज, स्वेदज, उद्भिज, अश्व, गौ, मनुष्य, हाथी तथा साधक निजस्वरूपको जान लेनेपर ब्रह्म ही हो जाते हैं; इनके अतिरिक्त जो कुछ भी यह जंगम (पैरोंसे चलनेवाले), क्योंकि जीवका वास्तविक स्वरूप ब्रह्ममय है। मु०उ० पक्षी, स्थावर (अचल)-रूप प्राणिवर्ग है, वह सब (३।२।९)-के अनुसार 'ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति' प्रज्ञानेत्र (प्रज्ञारूप नेत्रवाले) और प्रज्ञान (निरुपाधिक अर्थात् जो कोई भी उस परब्रह्म परमात्माको जान लेता चैतन्य)-में ही स्थित हैं अर्थात् प्रज्ञानस्वरूप परमात्मामें है, वह ब्रह्म ही हो जाता है। उपर्युक्त दशम मन्त्रमें इस महावाक्यको स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि 'देवोंमेंसे ही स्थित हैं। यह समस्त ब्रह्माण्ड, प्रज्ञानस्वरूप परमात्माकी शक्तिसे ही ज्ञान-शक्तियुक्त है। समस्त प्राणी उत्पत्ति, जिस-जिसने उस ब्रह्मको जाना वही तद्रूप (तत्+रूप) स्थिति और प्रलयके समय प्रज्ञान यानी ब्रह्ममें स्थित अर्थात् ब्रह्म हो गया। इसी प्रकार ऋषियों और मनुष्योंमेंसे रहनेवाले अर्थात् प्रज्ञाके आश्रित हैं। सम्पूर्ण जगत्का जिसने उस ब्रह्मको जाना वह तद्रूप हो गया। उस ब्रह्मको आश्रय प्रज्ञा ही है, अत: प्रज्ञानं ब्रह्म अर्थात् प्रज्ञान ही आत्मरूपसे देखते हुए ऋषि वामदेवने जाना 'मैं मनु हुआ और सूर्य भी ' अर्थात् ऋषि वामदेव मननशीलताके ब्रह्म है। बृ०उ० (२।३।६) तथा ऐतरेयोपनिषद् शांकरभाष्य कारण मनु हुए और ज्ञानके प्रकाशसे प्रकाशित होनेके (३।१।३)-में कहा गया है कि 'जो सम्पूर्ण औपाधिक कारण सूर्य हुए। उस ब्रह्मको इस समय भी जो इस प्रकार जानता है कि 'मैं ब्रह्म हूँ' (अहं ब्रह्म अस्मि), विशेषताओंसे रहित, नित्य, निरंजन, निर्मल, निष्क्रिय, शान्त, अद्वितीय 'नेति नेति' (न+इति अर्थात् इतना वह यह सब हो जाता है। उसका पराभव (अश्भ) ही नहीं) इत्यादि श्रुतियोंद्वारा क्रमसे समस्त विषयोंका देवता भी नहीं कर सकते, क्योंकि वह उनका आत्मा बाध करके जाननेयोग्य है तथा सब प्रकारके शाब्दिक ही हो जाता है। यहाँ भोगोंसे विरक्त एवं सब प्रकारके ज्ञानका अविषय है तथा अत्यन्त विशुद्ध प्रज्ञारूप कर्मफल प्राप्त होनेके कारण जिसका काम और कर्मरूप उपाधिके सम्बन्धसे सर्वज्ञ तथा जगत्का प्रवर्तक है, वह बन्धन नष्ट हो गया है, उस परब्रह्मभावको प्राप्त ईश्वर ही सबका नियन्ता होनेके कारण 'अन्तर्यामी' होनेवाले साधकको ब्रह्मविद्याके कारण 'ब्रह्म' कहा गया है। ब्रह्मविद्याको प्राप्त करनेके अधिकारी साधकको इस नामवाला है। अहं ब्रह्मास्मि—द्वितीय महावाक्य मानव-देहमें परिपूर्ण परमात्म-बुद्धिके साक्षीरूपसे अवस्थित यह यजुर्वेदका महावाक्य है तथा शुक्लयजुर्वेदके होकर स्फुरित होनेपर 'अहं' कहा जाता है तथा 'अस्मि' (हूँ) यह पद ब्रह्मके साथ अपनी एकताका बृहदारण्यकोपनिषद्के प्रथम अध्यायके चतुर्थ ब्राह्मणके बोध कराता है, अत: महावाक्य 'अहं ब्रह्मास्मि' से दशम मन्त्रके प्रारम्भमें ही इस महावाक्यका उल्लेख है। बृहदारण्यकोपनिषद्के इस दशम मन्त्रके पूर्व नवम तात्पर्य 'मैं ब्रह्मस्वरूप हूँ'। मन्त्रके अनुसार 'ब्राह्मणों (ब्रह्मको जाननेकी इच्छावाले तत्त्वमसि (तत्+त्वम्+असि)— जिज्ञासुओं)-ने कहा कि ब्रह्मविद्या (वह विद्या, जिससे तृतीय महावाक्य परमात्माको जाना जाता है)-से 'हम सर्व हो जायँगे।' यह सामवेदका महावाक्य है तथा छान्दोग्योपनिषद्के अर्थात् ब्रह्मको जाननेसे हम सब कुछ प्राप्त कर लेंगे। षष्ठ अध्यायके अष्टम खण्डके सप्तम मन्त्रमें इस महावाक्यका उल्लेख है तथा इस अध्यायमें इस यह मन्त्र जिज्ञासारूपमें है। इसका समाधान उपर्युक्त महावाक्यका कुल नौ बार उल्लेख हुआ है। इस दशम मन्त्रमें किया गया है कि ब्रह्मविद्याके द्वारा जब साधकने अपनेको जाना तब उसने यह महावाक्य 'अहं अध्यायके प्रथम खण्डके अनुसार महर्षि आरुणिका पुत्र

संख्या ८] वेदोंके म	१७] वेदोंके महावाक्य	
******************	**************************************	
श्वेतकेतु वेदोंका अध्ययनकर उद्दण्डभावसे घर लौटा।	अयमात्मा ब्रह्म ( अयम् आत्मा ब्रह्म )—	
महर्षि आरुणिने श्वेतकेतुसे कहा कि 'हे सोम्य! क्या तूने	चतुर्थ महावाक्य	
आचार्यसे वह आदेश (उपदेश) पूछा, जिसके द्वारा	यह अथर्ववेदका महावाक्य है तथा अथर्ववेदके	
अश्रुत श्रुत हो जाता है, अमत मत हो जाता है और	उपनिषद् माण्डूक्योपनिषद्के द्वितीय मन्त्रमें इस महावाक्यका	
अविज्ञात विशेषरूपसे ज्ञात हो जाता है।' श्वेतकेतुने	उल्लेख है, जिसका अर्थ है, 'यह आत्मा ब्रह्म है।'	
कहा 'भगवन्! वह आदेश किस प्रकारका है?' पिता	अबतक परोक्षरूपसे बतलाये हुए ब्रह्मको विशेषरूपसे	
(महर्षि आरुणि)-ने अपने पुत्र श्वेतकेतुको अनेक	प्रत्यक्षतया 'यह आत्मा ब्रह्म है', ऐसा इस उपनिषद्के	
दृष्टान्तोंसे समझाते हुए कहा कि 'सत्संज्ञक आत्मासे	ऋषि अनुदेश करते हैं। यहाँ 'अयम्' (यह) शब्दद्वारा	
यह सारा जगत् आत्मवान् है और हे श्वेतकेतो!	आत्माको अपने अन्तरात्मस्वरूपसे अंगुलि-निर्देशसे	
'तत्त्वमसि' अर्थात् वह आत्मा तू ही है। देहादिमें	<b>'अयमात्मा ब्रह्म'</b> ऐसा कहकर बतलाते हैं। इस	
आत्मबुद्धि होनेके कारण सदात्मबुद्धि नहीं होती। अत:	उपनिषद्के उपर्युक्त द्वितीय मन्त्रका अन्तिम भाग है	
महावाक्य <b>'तत्त्वमसि'</b> विकाररूप मिथ्या देहादिमें अधिकृत	'सोऽयमात्मा चतुष्पात्' अर्थात् 'वह यह आत्मा चार	
जीवात्मभावकी निवृत्ति करनेवाला ही है तथा ब्रह्म और	पादों (अंशों)-वाला है। आगेके मन्त्रोंमें इन चारों	
जीवके एकत्वका सूचक है। <b>'तत्त्वमसि'</b>	पादोंका वर्णन किया गया है। जाग्रत्-अवस्था जिसकी	
(तत्+त्वम्+असि)-में 'तत्' शब्दका अर्थ ईश्वर और	अभिव्यक्तिका स्थान है, वह 'वैश्वानर' आत्माका प्रथम	
'त्वम्' शब्दका अर्थ जीव है और 'असि' (है) पदके	पाद है। स्वप्न जिसका स्थान है, वह 'तैजस' आत्माका	
द्वारा तत् (जीव)-की ब्रह्मसे एकताका ग्रहण कराया	द्वितीय पाद है। सुषुप्ति जिसका स्थान है, वह प्राज्ञ ही	
गया है। त्वम् और तत् कार्य (शरीर) तथा कारण	आत्माका तृतीय पाद है। आत्माका तुरीय (चतुर्थ पाद)-	
(माया)-रूप उपाधिके द्वारा ही दो हैं। उपाधि न	स्वरूप अदृष्ट, अव्यवहार्य, अग्राह्य, अलक्षण, अचिन्त्य,	
रहनेपर दोनों ही एकमात्र सच्चिदानन्दस्वरूप	अव्यपदेश्य (अकथनीय), एकात्मप्रत्ययसार (जाग्रत्	
(सत्+चित्+आनन्दस्वरूप) हैं। यह जीव कार्य (शरीर)-	आदि स्थानोंमें एक ही आत्मा है) प्रपंचरहित, शान्त,	
की उपाधिसे युक्त है और ईश्वर कारण (माया)-की	शिव (कल्याणमय) और अद्वैतरूप है। यही आत्मा है	
उपाधिसहित है। कार्य एवं कारणरूपको छोड़ देनेपर	और यही साक्षात् जाननेयोग्य है। आगे कहा गया है कि	
पूर्ण ज्ञानस्वरूप बच रहता है। पहले आचार्यद्वारा श्रवण	वह यह आत्मा अक्षरदृष्टिसे ओंकार है। आत्माके पाद ही	
करना चाहिये, फिर मनन करना चाहिये, तत्पश्चात्	ओंकारकी मात्राएँ अकार, उकार और मकार हैं तथा	
निदिध्यासन करना चाहिये। ब्रह्मविद्याके सम्यक् ज्ञानसे	ओंकारकी मात्राएँ ही आत्माके पाद क्रमशः वैश्वानर,	
ही ब्रह्मकी प्राप्ति होती है।	तैजस एवं प्राज्ञ है। अत: ओंकारकी तीनों मात्राएँ तथा	
महावाक्य <b>'तत्त्वमसि'</b> (तत्+त्वम्+असि) में'त्वम्'	आत्माके तीनों पादोंमें एकत्व तथा मात्रारहित ओंकार तथा	
शब्दवाच्य 'महर्षि आरुणिपुत्र श्वेतकेतु' अपने पिताका	ब्रह्मकी तुरीयावस्थामें तादात्म्य है। जो उपासक ओंकारकी	
उपदेश सुननेसे पूर्व अपनेको देह और इन्द्रियोंसे भिन्न सद्रूप	मात्राओं एवं आत्माके पादोंमें एकत्वको जानकर उपासना	
(सत्+रूप) सर्वात्मा (सर्व+आत्मा) नहीं जानता था।	करता है, वह सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त कर लेता है और	
'त्वम् तत् असि' अर्थात् अब'तू वह है' इस प्रकार अनेक	महापुरुषोंमें प्रधान होता है, ज्ञान-परम्परामें वृद्धि करता है	
दृष्टान्त तथा हेतुपूर्वक पिताद्वारा समझाये जानेपर श्वेतकेतु	तथा सबके प्रति समान होता है और उसके वंशमें कोई	
पिताके इस कथनको कि <b>' मैं सत् ही हूँ '</b> समझ गया अर्थात्	ब्रह्मज्ञानहीन पुरुष नहीं होता तथा वह सम्पूर्ण जगत्का	
सद्रूप सत्य और अद्वितीय आत्माका ज्ञान होनेपर उसकी	यथार्थ स्वरूप जान लेता है और उसकी बाह्य दृष्टि निवृत्त	
विकाररूप मिथ्या देहात्म-बुद्धिकी निवृत्ति हो गयी।	हो जाती है अर्थात् वह सर्वत्र परब्रह्मको ही देखता है।	

अवस्थामें तादात्म्यको जानकर जो उपासक तुरीयावस्थाकी (प्रत्यक्ष) ज्ञान अग्निसदृश सम्पूर्ण पातकोंको जलाकर आराधना करता है, वह आत्मस्थ हो जाता है अर्थात् भस्म करता है। अपरोक्ष ज्ञान तो इस संसारसे उत्पन्न अज्ञानरूपी अन्धकारको नष्ट करनेवाला सूर्य ही है। इस

भाग ९३

सदगुरुकी कृपासे महावाक्योंद्वारा प्राप्त अपरोक्ष

भगवान् शंकरद्वारा चारों महावाक्योंका उपदेश दिये

उसका पुनर्जन्म नहीं होता। जगद्गुरु श्रीआद्यशंकराचार्यने अपने अन्तिम उपदेश प्रकार महावाक्योंद्वारा जीवात्माको परमात्मासे एकताकी अपूर्व अनुभूति होती है। 'रहस्योपनिषद्' के अनुसार

(उपदेशपंचकम्)-में कहा है कि 'वेदोंके महावाक्योंके

इसी प्रकार मात्रारहित ओंकार तथा आत्माकी तुरीय

अर्थका चिन्तन-मननकर निर्दिध्यासन करना चाहिये। कृतर्क त्यागकर वेदानुकूल तर्कोंसे आत्माका अनुसन्धान करना

चाहिये। 'मैं ब्रह्म हूँ' इस महावाक्यकी निरन्तर भावना

करनी चाहिये। रात-दिन अहंकारको नष्ट करनेका प्रयत्न करना चाहिये। देहमें अहंबुद्धिको नष्ट कर देना चाहिये।

जानेपर शुकदेवजी सम्पूर्ण जगत्के साथ तन्मय अवस्थाको प्राप्त हो गये। जो साधक गुरुकुपासे रहस्योपनिषद्में दिये

गये महावाक्योंका अध्ययनकर समझ लेता है, वह सभी

पापोंसे छूटकर साक्षात् कैवल्यपद प्राप्त कर लेता है।

जरूरतमन्दकी मदद

# अफ्रीकामें एक छोटा-सा देश है बासुतोलैंड! यहाँका अधिकांश भाग घने जंगलोंसे घिरा हुआ है। इन्हीं

दरवाजा खटखटाया तो एक गोरा साहब निकलकर बाहर आया। ग्रामीण वेशभूषावाले एक काले युवकको

जंगलोंके बीच कावु गाँवमें बिसाऊ नामक युवक रहता था। वह जंगलमें शिकार करके ही अपना गुजारा करता था। एक दिन बिसाऊ जंगलमें शिकार करने गया। शिकारकी तलाशमें वह काफी दूर निकल गया।

इस बीच दोपहर हो गयी। बिसाऊ बुरी तरह थक गया था। भूख-प्याससे बेहाल होकर वह जंगलके भीतर बढ़ता गया। चलते-चलते वह सासे नामक शहरमें पहुँच गया। वहाँ उसे एक हवेली दिखायी दी। बिसाऊने

देख उसने गुस्सेसे पूछा—क्या बात है? बिसाऊ सहम गया। बोला—साहब! प्याससे दम निकला जा रहा है। पानी पिलाकर रहम कीजिये।

पर गोरे साहबको दया नहीं आयी। उन्होंने उसे अपमानितकर बाहर निकाल दिया। बिसाऊ किसी

तरह गिरते-पड़ते अपने घर पहुँचा।

कई महीने बादकी बात है। एक दिन वे ही गोरे साहब जंगलमें शिकार खेलने गये, पर उस दिन

उन्हें कोई शिकार नहीं मिला। जंगलमें भटकते-भटकते वह बिसाऊके गाँवमें पहुँच गये। तबतक रात हो

चली थी। वे एक झोपड़ीके सामने पहुँचे। वह झोपड़ी बिसाऊ की थी। गोरे साहबने आवाज लगायी। बिसाऊ

बाहर निकला। जैसे ही उसकी नजर उनपर पड़ी, वह उन्हें पहचान गया, पर गोरे साहब उसे पहचान नहीं पाये। उन्होंने बिसाऊसे रातभरके लिये आश्रय माँगा। बिसाऊ तुरंत तैयार हो गया।

उसके पास जो भी रूखा-सूखा था, उसीसे गोरे साहबकी सेवा की। गोरे साहबको सोनेके लिये अपना बिस्तर दिया और खुद जमीनपर सोया। सुबह हुई तो साहबने बिसाऊको धन्यवाद दिया और शहरका रास्ता पूछा। बिसाऊने कहा—चलिये, मैं आपको छोड़ आता हूँ।

साहबकी हवेलीके पास पहुँचकर बिसाऊने वापस जानेकी इजाजत माँगी। गोरे साहबने कहा-तुमने मेरा इतना आदर-सत्कार किया, अब मुझे भी कुछ आतिथ्य करने दो। चलो, चलकर मेरे साथ नाश्ता करो। बिसाऊ बोला—साहब! आप मेरी सेवाके बदलेमें मेरा सत्कार करना चाहते हैं ? यह ठीक नहीं है। फिर

उसने पुरानी बात साहबको याद दिलायी और कहा—साहब! जरूरतमन्द व्यक्तिकी मदद हमेशा करनी चाहिये। जरूरतमन्दकी मदद ईश्वरकी सेवा है। यही इन्सानी धर्म भी है। इतना कहकर बिसाऊ अपने गाँवकी ओर चल  संख्या ८ ] संत-वचनामृत संत-वचनामृत ( वृन्दावनके गोलोकवासी सन्त पूज्य श्रीगणेशदासजी भक्तमालीके उपदेशपरक पत्रोंसे ) हमारी आसक्ति है, पर वह धन जड़ होनेसे हममें आसक्ति 🕸 प्रार्थनासे वेद, रामायण, महाभारत, भागवत आदि पुराण भरे पड़े हैं। सभी भाषाओंके सभी सन्तोंने प्रार्थनाएँ की नहीं करेगा। प्रेम विशुद्ध है, मोह कामनासे युक्त है। प्रेम स्वार्थरहित है, मोहमें स्वार्थ है। हैं। उनकी वाणीद्वारा प्रार्थना करनी चाहिये। प्रार्थनामें प्रभुके स्वरूपका, अपने स्वरूपका वर्णन होना चाहिये। सूर, तुलसी, 🕏 ज्ञान और भक्ति प्रारब्धके बलसे नहीं मिलते हैं। मीरा, हरिदास आदिके पदोंद्वारा प्रार्थना कर्तव्य है। इन्हें पानेके लिये अथक परिश्रमकी अति आवश्यकता 🕸 पूजाके जितने उपचार जल, चन्दन, तुलसी, है। संसारके सुख तथा दु:ख ये जैसे प्रारब्धमें होंगे, बिना पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य आदि हैं उनके अर्पणके समय प्रयासके भी मिलेंगे। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि प्रार्थना रहनी चाहिये। मन्त्रोंका प्रयोग करते हुए सभी उद्योग नहीं करना चाहिये। ज्ञानी मनुष्य जब परमहंस उपचार अर्पण करना चाहिये। हृदयका भाव अर्पण भावको प्राप्त कर लेता है, तब वह अजगरकी तरह पड़ा करनेपर हृदयके भावको देखकर प्रभु शीघ्र ही प्रसन्न हो रहता है अपने खाने-पीनेकी चिन्ता न करके आत्मचिन्तन, जाते हैं, उपचारके साथ प्रार्थना होनी चाहिये। केवल ईश्वरचिन्तन करता है, उसके सम्बन्धकी चिन्ता ईश्वर प्रार्थना की जाय कोई उपचार न हो तो भी प्रभु प्रसन्न करता है। परंतु विद्या-भक्तिको, ज्ञानको प्राप्त करनेके होकर अपनेतकको दे देते हैं। लिये भाग्यके भरोसे नहीं रहना चाहिये, उसे पानेके लिये 🕸 'हृषीकेण हृषीकेशसेवनं भक्तिरुच्यते।' मन, वाणी, शरीरसे भगवान्का भजन-पूजन, शास्त्रोंका इन्द्रियोंके समूहसे इन्द्रियोंके स्वामीकी सेवा करना ही अध्ययन, सत्संग अवश्य करना चाहिये। भक्ति है। जैसे श्रीअम्बरीष सभी इन्द्रियोंसे भक्ति करते थे। 🕯 अपने मनमें प्रेम जाग्रत् हो, इसके लिये भगवत् इसलिये उनकी इन्द्रियाँ शुद्ध आहारका ग्रहण करती थीं। कृपा ही कारण है। प्रेमको बढ़ानेके लिये विरह और अत: इनका भी उपयोग भक्तिमें समझना चाहिये। उक्त मिलन जरूरी है। ये भी प्रभुकृपासे ही प्राप्त होते हैं। विधिसे भक्तजन सत्त्वकी शुद्धि करते हैं। कृपाप्राप्तिके लिये प्रभुकी शरणागित ही मुख्य है। 🕏 जब चारों ओरसे जल प्राप्त होता है, तब कुएँकी 🕯 अपना शरीर और संसार इसमें जो आसक्ति है, जरूरत नहीं रह जाती। इस तरह प्रेमाभक्तिके सुखको उसका कारण यह है कि हम उसकी नश्वरता, दु:खरूपताको प्राप्त कर लेनेसे संसारके, धनके, इन्द्रियोंके सुखोंको प्राप्त नहीं जानते हैं। संसारमें अति आसक्तिके बाद एक-न-करनेकी इच्छा नहीं रह जाती है। कष्टसे वह दूर हो जाता एक दिन ऐसा आयेगा कि वहाँसे मन हट जायगा। ईश्वरसे है, उसे शरीरिक या मानसिक कष्टोंका अनुभव नहीं होता जीवकी एकताका प्रमाण यही है कि एक बार यदि मन है, जैसे श्रीजयदेव कवि। नारदजीके अनुसार प्रेमका लग जाय तो सदा-सर्वदाके लिये तल्लीनता हो जायगी, लाख स्वरूप अनिर्वचनीय है अर्थात् उसके सम्बन्धमें ठीक-और रंगकी तरह। पिघली लाखमें रंगके मिलनेके बाद उसे ठीक कहते नहीं बनता है। अनुमानसे, अनुभवसे सन्तोंने अलग-अलग नहीं किया जा सकता है। वे स्वयं चाहें कि जैसा कहा है, वह ही कहा-सुना जाता है। लोभीको हम अलग हो जायँ तो भी नहीं हो सकते। भावुक भक्त संसारको ईश्वर मानकर उसके साथ बुरा व्यवहार नहीं उपदेश नहीं देना पड़ता है कि तुम धनसे प्रेम करो। उसका धनसे सहज ही मोह होता है। धनके मोहको प्रेम नहीं करता है, मन-ही-मन उसे नमस्कार करता है, पर तमोगुणी, कहना चाहिये। प्रेम चैतन्य प्रभुमें और सच्चे सन्तोंमें हो रजोगुणी संसारमें लीन नहीं होता है। ईश्वर मानकर संसारको सकता है। जड़ और नाशवान्में प्रेम नहीं हो सकता है। प्रणाम करना चाहिये। माया और उसके कार्यसे अपनेको उसमें जो आसक्ति है, उसे मोह कहना चाहिये। धनसे बचाना चाहिये।['परमार्थके पत्र-पुष्प'से साभार]

प्रेम ही सर्वोपरि तत्त्व है ( आचार्य श्रीगोविन्दरामजी शर्मा ) प्रसंग हमारे मानसको अधिक स्पर्श करते हैं। महाभारतका **१-भगवान् प्रेमके भूखे हैं**—शास्त्रोंमें ऐसा

आया है कि निर्गुण-निराकार ब्रह्म अकेले थे और अपने अमृल्य हीरा 'गीता' हमें इसीलिये प्रिय है कि उसमें भगवान्

अकेलेपनको दूर करनेके लिये (एकाकी न रमते) उन्होंने स्फुरणा की कि 'एकोऽहं बहुस्याम' अर्थात् 'मैं

एक ही अनेक रूपोंमें हो जाऊँ'। 'बहु स्यां प्रजायेयेति'

(छान्दोग्य० ६।२।३, तैत्तिरीय० २।६) अर्थात् 'मैं

अनेक रूपोंमें प्रकट होकर बहुत हो जाऊँ।' और इस प्रकार सृष्टिकी रचना हुई। सृष्टिका निर्माण करके भी

भगवानुको पूर्ण तृप्ति तभी हुई; जब उन्होंने मनुष्य नामक

जीवको रचा, जिससे कि वह भगवान्को प्रेम कर सके। तुलसीदासजीने इसे इस प्रकार परिभाषित किया है—

सब मम प्रिय सब मम उपजाए। सब ते अधिक मनुज मोहि भाए।। (रा०च०मा० ७।८६।४) एक मनुष्यको ही भगवान्ने यह योग्यता दी है कि वह

भगवान्को प्रेम कर सकता है, वह भगवान्के बारेमें चिन्तन-मनन-स्मरण कर सकता है तथा अपने स्वरूपको पहचानकर परमात्माको प्राप्त कर सकता है।वह ब्रह्मस्वरूप, भगवदाकार हो सकता है, भगवानुका प्रिय पात्र होकर उन्हें अनन्त रस

प्रदान कर सकता है तथा स्वयं भी उस रसका आस्वादन कर सकता है। तभी तो वह मुक्ति अथवा मोक्षकी भी अवहेलना करके जन्म-जन्मान्तर भगवानुके चरणोंमें प्रीतिकी कामना

करता है और भगवान् भी उसके लिये कहते हैं कि '*मैं* भगतनको दास भगत मेरे मुकुटमणि।' साधारण जनमानसको वे ही ग्रन्थ अधिक प्रिय होते

हैं, जिनमें प्रेमका प्रवाह होता है। गोस्वामी तुलसीदासजीकी रामचरितमानसकी लोकप्रियताका कारण यही है कि उसमें आदिसे अन्ततक जीवमात्रका परमात्मासे स्वाभाविक प्रेम

वर्णित हुआ है तथा परमात्मा भी चराचर जीवोंके लिये सदैव व्याकुल रहते हैं। भागवतमें भी भगवान् एवं उनके भक्तोंका

प्रेममय स्वरूप हमें आकर्षित करता रहता है। रामलीला और रासलीला युगों-युगोंसे हमारे प्रेममय मानसको आह्लादित

करती है। महाभारत हमारे मानसको तुलनात्मक रूपमें

एवं भक्तका अनन्य प्रेम प्रतिपादित हुआ है। २-भगवत्प्राप्ति प्रेमसे ही सम्भव है — रामचरित-

वर्णन हुआ है। उसने अपनी भुजाओंके बलसे सुर्य, चन्द्रमा, वायु, वरुण, कुबेर, अग्नि, काल, यम, किन्नर, सिद्ध, मनुष्य, देवता और नाग सभीको अपने अधीन कर लिया

था। धर्मका लोप हो गया था, सब वेदविरुद्ध कार्य होते थे, जिस स्थानमें गौ और ब्राह्मणोंको राक्षस पाते थे, उसी नगर, गाँव और पुरवेमें वे आग लगा देते थे। कहीं भी शुभ आचरण नहीं होता था तथा देवता, ब्राह्मण और गुरुको

मानसके बालकाण्डमें रावणके अत्याचारोंका व्यापक रूपमें

[भाग ९३

कोई नहीं मानता था। न हरिभक्ति थी, न यज्ञ, तप और ज्ञान था। लोग माता-पिता और देवताओंका सम्मान नहीं करते थे और साधुओंसे उलटे सेवा करवाते थे। यह सब दुराचरण देखकर दुखी होकर पृथ्वी गौका रूप धारणकर छिपे हुए देवताओं और मुनियोंके पास गयी। वे सभी

श्रीहरिके चरणोंका स्मरण करना चाहिये। सभी देवता विचार करने लगे कि वे प्रभु कहाँ मिलेंगे। उस समय भगवान् शंकरने बडी मार्मिक बात कही-हरि ब्यापक सर्बत्र समाना। प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना॥

मिलकर ब्रह्माजीके लोकमें गये। ब्रह्माजीने कहा हम सभीको

देस काल दिसि बिदिसिहु माहीं। कहहु सो कहाँ जहाँ प्रभु नाहीं॥ (रा०च०मा० १।१८५।५-६) मैं तो यह जानता हूँ कि भगवान् सब जगह समानरूपसे व्यापक हैं, प्रेमसे वे प्रकट हो जाते हैं। देश, काल, दिशा-

इसपर व्याकुलहृदयसे ब्रह्माजीसहित सभी देवताओं, मुनियों, सिद्धों आदिने स्तुति-प्रार्थना की तो गम्भीर आकाशवाणी हुई 'हे मुनि, सिद्ध और देवताओंके

विदिशामें बताओ, ऐसी जगह कहाँ है, जहाँ प्रभु न हों।

स्वामियो! डरो मत। तुम्हारे लिये मैं मनुष्यका रूप धारण करूँगा और पृथ्वीका सब भार हर लूँगा।' इस प्रकार सभी साधकोंको भगवान्को सर्वज्ञ, सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान्

कम प्रभावित करती है; क्योंकि उसमें कूटनीति, राजनीति, समाजनीति एवं रणनीतिका अधिक चित्रण हुआ है। जहाँ-एवं परम दयालु मानते हुए उन्हें अनन्य प्रेमसे प्राप्त जहाँ धर्म, भक्ति, ज्ञान और वैराग्यके प्रकरण हैं, वे ही करनेका प्रयास करना चाहिये।

ख्या ८] प्रेम ही सर्वोपरि तत्त्व है ३१	
******************	**************************************
इसी प्रकारका एक भावपूर्ण प्रसंग अयोध्याकाण्डमें	मानव अगर परमात्माकी सृष्टिसे प्रेम नहीं करता है तो
वाल्मीकिजीके आश्रमका है, जहाँ प्रभु रामने वाल्मीकि	उसका जीवन कभी सुखी नहीं हो सकता तथा वह
मुनिसे पूछा है कि आप हमें वह स्थान बतलाइये, जहाँ	परमात्माकी प्रसन्नता अथवा प्रियताको प्राप्त नहीं कर
मैं लक्ष्मण और सीतासहित पर्णकुटी बनाकर कुछ समय	सकता। मैत्री, करुणा, मुदिता, अहिंसा, सहनशीलता,
निवास करूँ। वाल्मीकिजी तो त्रिकालदर्शी थे और	निर्भयता, अन्त:करणकी निर्मलता, दया, अक्रोध, (हिंसा,
जानते थे कि प्रभु राम जगदीश्वर हैं तथा नर-लीला कर	ईर्ष्या, घृणा आदिका अभाव), क्षमा, किसीमें भी
रहे हैं, अत: उनकी स्तुति करते हुए उन्होंने कहा—	शत्रु-भावका न होना आदि मानवीय एवं दैवीगुण
सोइ जानइ जेहि देहु जनाई। जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई॥	प्रेमपूर्ण व्यक्तित्वमें ही सम्भव हैं। तभी तो कबीरदासजीने
तुम्हरिहि कृपाँ तुम्हिह रघुनंदन। जानिह भगत भगत उर चंदन॥	कहा है—
(रा०च०मा० २।१२७।३-४)	पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोय।
वही आपको जानता है, जिसे आप जना देते हैं और	ढाई आखर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होय॥
जानते ही वह आपका ही स्वरूप बन जाता है। हे रघुनन्दन!	चाखा चाहै प्रेम रस राखा चाहै मान।
हे भक्तोंके हृदयको शीतल करनेवाले चन्दन! आपकी ही	एक म्यान में दो खड़ग, देखा सुना न कान॥
कृपासे भक्त आपको जान पाते हैं। फिर वाल्मीकिजीने	भक्त कवि रहीमदास भी कहते हैं—
भक्तोंके हृदयके अनेक गुणोंका वर्णन करते हुए अन्तत:	रहिमन धागा प्रेम का, मत तोड़ो चटकाय।
कहा कि जिसका आपसे स्वाभाविक प्रेम है, उसके मनमें	टूटे से फिर ना जुड़े, जुड़े गाँठ पड़ जाय॥
आप निरन्तर निवास कीजिये। मुनिने फिर चित्रकूटपर्वतपर	टूटे सुजन मनाइये, जो टूटे सौ बार।
रहनेके लिये प्रभुको कहा, जहाँ अत्रि आदि श्रेष्ठ मुनियोंका	रहिमन फिर फिर पोइये, टूटे मुक्ताहार॥
वास है, सती अनसूयाद्वारा तपोबलसे लायी गंगाजीकी धारा	सहजोबाईका कहना है कि अहंकाररहित व्यक्तित्व
मन्दाकिनी है। प्रभु राम चित्रकूटपर्वतपर निवास करने लग	ही प्रेमतत्त्वका अधिकारी है—
जाते हैं, जहाँ कोल-भील उनकी बड़े प्रेमसे सेवा करते हैं	सीस कान मुख नासिका, ऊँचे ऊँचे नाँव।
तथा कहते हैं 'हे नाथ!हम सब कुटुम्बसमेत आपके सेवक	'सहजो' नीचे कारने, सब कोउ पूजै पाँव॥
हैं, इसलिये हमें आज्ञा देनेमें कोई संकोच न कीजियेगा।'	जिसको प्रेमका रंग चढ़ जाता है, जो संसारको ' <i>सीय</i>
जो वेदोंके वचन और मुनियोंके मनको भी अगम हैं, वे	राममय 'एवं 'प्रभुमय 'देखने लग जाता है, जो सबमें 'यो
करुणाके धाम प्रभु श्रीरामचन्द्रजी भीलोंके वचन इस तरह	मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मिय पश्यति ' के भाववाला हो
सुन रहे हैं, जैसे पिता बालकोंके वचन सुनता है। गोस्वामी	जाता है, उसके लिये परमात्मा अदृश्य नहीं होते और वह
तुलसीदासजी महाराज यहाँ अकिंचन भक्तोंके मार्गदर्शनके	परमात्माके लिये अदृश्य नहीं होता। (गीता ६। ३०)
लिये एक अनुपम पंक्ति कहते हैं—	ऐसे ही प्रेमीके लिये सन्त कहते हैं—
रामिंह केवल प्रेमु पिआरा। जानि लेउ जो जाननिहारा॥	प्रेम प्रेम सब कोई कहे, प्रेम न जाने कोय।
(रा०च०मा० २।१३७।१)	अष्ट प्रहर भीगा रहे, प्रेम कहावे सोय॥
'श्रीरामचन्द्रजीको केवल प्रेम प्यारा है, जो जाननेवाला	मानव-जातिके गौरवपूर्ण इतिहासमें एक-से-एक
हो (जानना चाहता हो), वह जान ले।'	बढ़कर आदर्श चरित्र हुए हैं, जिन्होंने अपने सत्कर्मोंके
यहाँ द्रष्टव्य यह है कि मुनियोंके लिये तो प्रभु	द्वारा धर्म, संस्कृति एवं मानवीय मूल्योंकी प्रतिष्ठा की
अगम्य हैं, 'सोड़ जानड़ जेहि देहु जनाई' हैं और	है तथा जीवनमें अथक पुरुषार्थके द्वारा आलस्य, राग-
भक्तोंके लिये ' <b>केवल प्रेमु पिआरा</b> ' हैं, वे प्रेमसे उन्हें	द्वेष, सुख-भोग् और संग्रहका त्याग करते हुए सेवा,
सहज ही प्राप्त कर सकते हैं।	सदाचार और प्रेमका मार्ग आलोकित किया है। अतः
३-सन्त-महात्मा प्रेमका ही पाठ पढ़ाते हैं—	प्रेम ही सर्वोच्च सत्ता है, प्रेम ही सच्चिदानन्दघन ईश्वर
ईश्वर और जीवका परस्पर प्रेम तो अनादि है ही, किंतु	हं तथा प्रेम हो सर्वस्व है।

बच्चोंके संस्कारपर बड़ोंके व्यवहारका प्रभाव (श्रीसीतारामजी गुप्ता) घरमें सबसे छोटा सदस्य है मेरा सवा-डेढ ऐसे खेलो। लोग प्राय: खाने-पीनेकी चीजें भी बच्चोंकी सालका पौत्र। वह मौका लगते ही झाड़ उठा लाता है पसन्दके बजाय अपनी पसन्दकी ही लाते हैं। हम

िभाग ९३

उनकी पसन्दकी चीजें खायेगा तो ये भी स्वाभाविक

ही है कि उनकी पसन्द या जरूरतके दूसरे काम भी

उनकी तरह ही करनेकी कोशिश करेगा: क्योंकि

प्रत्यक्ष या परोक्ष रूपसे यही तो हम उसे सिखा रहे

होते हैं और यदि ऐसा करनेसे उसे रोकेंगे तो वह

मचलने लगेगा। रोयेगा, रूठेगा। उसका ये व्यवहार

बड़ोंसे प्रश्न करना ही है कि जब आप सब लोग ये सब कर रहे हो तो मेरे करनेमें क्या बुराई है?

उसका व्यवहार बिलकुल ठीक है। यदि आप अपने सामने नहीं करने देंगे तो वह आँख बचाकर या

पीछेसे करेगा तो नन्हें बच्चोंको रोकनेकी बजाय वे

जो करें करने दीजिये। बस, उनकी सुरक्षाका ध्यान रिखये। उन्हें सर्दी-गर्मी, आग-पानी एवं गन्दगीसे

बचानेका प्रयास करते रहिये। जो चीजें उनके लिये

खतरनाक या कोई दुर्घटना पैदा करनेवाली हो सकती

हों, उनकी पहुँचसे दूर कर दीजिये। खतरनाक रसायन

मुँहमें डालता है तो उसे रोकना जरूरी है। इसके

लिये उसका पेट भरा होना भी जरूरी है। उसे सही समयपर उचित आहार दीजिये, लेकिन खाने-पीनेके

मामलेमें भी बच्चे कम परेशान नहीं करते। अधिकांश

बच्चे प्राय: दूध पीने या खानेसे बचनेकी कोशिश

करते हैं और जब घरके दूसरे या बड़े सदस्य भोजन

करते हैं तो उनके भोजनमेंसे उठाकर खानेका प्रयास

करते हैं। ये तो बड़ी अच्छी बात है। इस बातका

लाभ उठाना चाहिये। जब घरके बडे सदस्य कुछ भी

यदि बच्चा इधर-उधरसे कोई गलत चीज उठाकर

एवं दवाएँ उनकी पहुँचसे बहुत ऊपर रखिये।

a Hindrian Dispord Server https://dscapp/dharman | MADE WITH LOVE BY Avinash/Sha

या जहाँ-कहीं भी पानी मिले, उसमें डुबोकर गीला कर लेता है और कभी फर्शपर पोंछा लगाने लगता है तो

कभी मेज साफ करने लगता है। गाडीमें अगली सीटपर

बैठता है तो कभी रेडियोका वॉल्यूम बढ़ा देता है तो

कभी एसी का। कभी वाइपरका लीवर घुमा देता है तो

कभी गियर रॉड खींचनेका प्रयास करता है, वह ऐसा

क्यों करता है ? वह ऐसा इसलिये करता है; क्योंकि वह

हम सबको ऐसा करते हुए देखता है और उसे खुद करनेकी कोशिश करता है। यह अत्यन्त स्वाभाविक है।

बच्चा खाली या शान्त नहीं बैठ सकता। उसे कुछ-न-

कुछ खेल करना ही है। घरके सदस्योंके काम और दूसरे क्रियाकलापोंकी नकल करनेसे अच्छा खेल उसके लिये

उसके पास खिलौने नहीं हैं, जो वह घरकी दूसरी

चीजोंसे खेलनेकी कोशिश करता है? खिलौने पर्याप्त

हैं, लेकिन वास्तविकता ये है कि यदि उसके चारों ओर बहुत सारी चीजें रखी हों तो वह उन सबसे

भी खेलेगा। अपने आसपासकी सभी चीजें उसे

आकर्षित करती हैं। घरके सदस्य जिन चीजोंका

प्रयोग करते हैं और जैसे करते हैं, वह भी उन सभी

चीजोंका उन्हींकी तरह या अपने तरीकेसे प्रयोग करना

चाहता है। यही उसका खेल है। बच्चा खिलौनोंसे भी प्राय: तभी खेलता है, जब दूसरे लोग उनसे

खेलना शुरू करते हैं। वास्तविकता ये भी है कि

लोग अपने बच्चोंके लिये जो खिलौने खरीदते हैं, वे

बच्चोंकी पसन्दके नहीं, अपनी पसन्दके खरीदते हैं।

प्रश्न उठता है कि क्या बच्चेके खेलनेके लिये

और कोई हो ही नहीं सकता।

थोपनेका प्रयास करते ही रहते हैं।

और लगता है फर्शपर झाड़ लगानेकी कोशिश करने। कभी वाइपर उठा लाता है और उसे चलाने लगता है।

कोई भी कपड़ा मिल जाय उसे उठाकर पानीकी बाल्टीमें बच्चा जब बड़ोंकी पसन्दके खिलौनोंसे खेलेगा,

बच्चोंसे अपनी बात मनवाने या अपनी पसन्द उनपर

परदादी आदि होते हैं, बच्चोंके लिये हर तरहसे बड़ा ठीक रहता है। बुजुर्ग प्राय: दलिया-खिचड़ी आदि लेते हैं तो बच्चा भी उनके साथ ये सब खाद्य पदार्थ ले लेता है, जो उसके लिये ठीक रहते हैं। इसके बाद सबसे महत्त्वपूर्ण प्रश्न है शिष्टाचार

एवं नैतिकताके विकासका। अनुकरण अथवा नकलका हम सबके जीवनमें बहुत महत्त्व है। नकलके बिना हम सीख ही नहीं सकते, लेकिन गलत चीजोंकी नकल करना घातक है। बच्चा भी अनुकरणसे ही सीखता है। वह बड़ोंका ही अनुकरण करता है। अपने अन्दाजमें वे बडोंकी ही भाषा बोलता है और

बड़ोंकी तरह ही बोलता है। हम शिष्टाचारका यथेष्ट पालन न करें और बच्चोंको समझायें कि वे शिष्टाचारका पालन करें तो ये सम्भव नहीं। बच्चोंको शिष्ट बनाना है तो माता-पिताको शिष्ट बनना होगा। हम घरमें एक-दूसरेसे एवं मेहमानों या अन्य

आगन्तुकोंसे जैसा व्यवहार करते हैं अथवा जैसी भाषा बोलते हैं, बच्चा भी उसीका अनुकरण करेगा। अभिवादन भी उन्हींकी तरह करेगा। लहजा उसका अपना होता है, लेकिन भाव बडोंका ही आ जाता है। माता-पिता एवं घरके अन्य सदस्योंमें जैसी आदतें होती हैं, बच्चा बड़ी सूक्ष्मतासे न केवल उनका निरीक्षण करता रहता है, अपितु उनकी नकल भी करता रहता है। यदि बच्चोंमें सचमुच अच्छी आदतें डालनी हैं, उन्हें सुसंस्कृत बनाना है तो माता-पिताको भी स्वयंमें अच्छी आदतें डालनी होंगी और सुसंस्कृत बनना होगा। बच्चा जब हमारे व्यवहार अथवा व्यक्तित्वमें कमी तथा बातोंमें विरोधाभास पाता है तो वह विचलित

हो जाता है। हमारी कथनी एवं करनीका अन्तर या

किसीके सामने एवं उसकी पीठ पीछे उसके प्रति

चरित्रके विकासमें इन बातोंका बड़ा प्रभाव पड़ता है। हम बात-बातपर गुस्सा करते हैं या झूठ बोलते हैं तो बच्चा भी ऐसा ही करेगा। हमारे व्यवहार अथवा आचरणमें दोहरा चरित्र है तो बच्चेके व्यवहार एवं आचरणमें भी वह जल्दी ही आ जायगा। प्राय: ऐसा होता है कि माता-पिता या घरके अन्य सदस्योंमें कुछ कमियाँ होती हैं। यह स्वाभाविक है, लेकिन कोई माता-पिता या घरका अन्य सदस्य ये नहीं चाहता कि उनके बच्चोंमें भी ये किमयाँ आयें। वे बच्चोंको उन किमयोंसे बचानेके लिये पुरा जोर लगा देते हैं। यहाँ स्वयंको ठीक करनेकी बजाय बच्चोंको ठीक करनेपर जोर होता है। इसके लिये समझानेसे लेकर डॉंटने-डपटने एवं मारने-पीटनेतक

सभी तरीके आजमाये जाते हैं, लेकिन बच्चोंपर इसका

सकारात्मक नहीं नकारात्मक प्रभाव ही पडता है।

बच्चोंको जिन बातोंके लिये जोर देकर रोकनेका

गयी बात ठीक थी या उसके जानेके बाद पहली

बातके विपरीत कही गयी बात उचित है। उसकी

प्रशंसा या चापलुसी ठीक थी या उसकी आलोचना

ठीक है। बच्चेके सम्पूर्ण आचरण एवं उसके नैतिक

प्रयास किया जाता है, बच्चे उन्हींके बारेमें सोचते रहते हैं और जो हमारी सोच होती है, वही अन्ततोगत्वा हमारे जीवनकी वास्तविकतामें परिवर्तित हो जाती है। बच्चे भी इस प्रभावसे अछूते नहीं रहते। गुण हों या अवगुण ऊपरसे नीचेकी ओर संक्रमित होते हैं। बच्चे ही नहीं, हम सब भी अपने परिवेशसे ही ज्यादा सीखते हैं, अत: परिवेशको सुधारना अनिवार्य है। यदि हम वास्तवमें चाहते हैं कि हमारे बच्चोंमें

अच्छी आदतों एवं सही नैतिक मूल्योंका विकास हो तो उन सभी आदतों एवं नैतिक मूल्योंको स्वयं माता-पिताको भी अपने अन्दर विकसित करना होगा। दूसरा

व्यवहार या आचरणमें अन्तर बच्चेपर सबसे ज्यादा कोई उपाय या विकल्प हो ही नहीं सकता। साधकोपयोगी उपदेशामृत [ व्रजभाषामें ] ( गोलोकवासी सन्त श्रीगयाप्रसादजी महाराज )

## भोगोंमें सुखासक्ति तथा भोग-कामना सब कछु त्यागके मनः शान्तिकौ उपाय

## दिन-रात प्रभुके भजन-चिन्तनमें व्यतीत करनौ।

संसार भूलें। जो कुछ करें, कहें, सोचें सब एकमात्र

इनके लिये ही हो। अपनौ स्वार्थ छू न जाय। या प्रकार साधन करवेसौं मन शान्त हैकें इनमें लग जावैगौ और क्रमश:-क्रमश: प्रेम उत्पन्न है जावैगौ। वा समय इनकौ

चिन्तन करनौ नहीं परै है, स्वत: ही होयवे लगै है। और वह साधक जीते-जी जीवनमुक्त है जाय है। रहनी

हाँ, भजन-साधनके साथ-साथ रहनीकी हू बड़ी

आवश्यकता है। सबकौ हित, सबसौं प्रेम, सबकौ सम्मान, सबकूँ सुख पहुँचायवेकी भावना, काहुकी निन्दा नहीं, काहुसौं विरोध नहीं, हृदय कठोर न बनै, मक्खनवत् कोमल होय। तब यह साधक मरवेके पश्चात् नित्य

लीलामें प्रवेश कर जायगौ। निष्कामता जो कुछ करै केवल भगवान्के लिये ही करै और

वासना हू इनकी ही बनै।

व्रजवासकौ फल ? केवल एक श्रीकृष्ण-प्रेम। तबही व्रजवास सफल है।

लक्ष्यकी दुढ़ता

निष्कामता है केवल श्रीकृष्ण ही लक्ष्यमें रहें। जो कछु करै केवल श्रीकृष्णप्रीत्यर्थ ही करै।

शरीरके द्वारा होयवे वारी समस्त चेष्टा, समस्त व्यवहार एवं समस्त सम्बन्ध केवल लक्ष्य (श्रीभगवत्प्रेम)-

प्राप्तिके लिये ही हों। सम्पूर्ण जीवन एवं शरीरकी सँभार हू केवल लक्ष्यकी प्राप्तिके लिये ही हो तथा यह

सब शास्त्रसम्मत एवं काहू संतकी आज्ञानुसार ही हों तबही जीवनके अन्ततक लक्ष्य सतत प्रकाशित रह

सकै है।

व्रजवासकी रहनी

शरीर एवं शरीरके सम्बन्धसौं ममता, राग-द्वेष,

श्रीकृष्णप्रेमके लिये व्रजवास करें। श्रीभगवत्प्रेम-प्राप्तिके लिये ही सम्पूर्ण प्रयत्न करें। संसारी लोगनसों कोई सम्बन्ध न रहै। काहू महापुरुषमें श्रद्धापूर्वक, सत्यता एवं

तत्परताके साथ साधनमें जीवनपर्यन्त जुटौ रहै। शरीर-सम्बन्धी कोई चिन्ता न करे, प्रारब्धानुसार शरीरकौ काम स्वतः ही मृत्युपर्यन्त चलतौ रहै है। उपरोक्त विधिसौं साधनके द्वारा सबरौ काम ठीक बनतौ जायगौ। इन्द्रियाँ

जो बर्हिमुखी हैं, वे हु धीरे-धीरे सब ठीक है जायगीं। श्रीभगवत्प्रेमी बनकें श्रीभगवत्सेवामें पहुँच जायगौ। साधनमें बाधक

साधनामें प्रगतिके लिये संसारी लोगनसौं सम्बन्ध (ममता, आसक्ति), व्यवहार और संसारी कामनाका त्याग किये बिना साधनामें आगे बढवेमें बाधा रहेगी, प्रगति नहीं होगी।

कलिमें भगवत्प्राप्ति अन्य युगनकी अपेक्षा सरल ऐसे घोर कलिकालमें जबिक वातावरण अत्यन्त दुषित बन गयौ है, लोगनकी मनोवृत्ति अत्यन्त स्वार्थपरायण एवं कुटिल है, ऐसे समयमें कोई पूरी सत्यताके साथ

लिये और युगनकी अपेक्षा अति उत्तम है। मन लगाकर अधिक समय भजन प्रश्न—अधिक समयतक मन लगाकर भजन

कैसे हो? उत्तर—कोई अनुभव हुए बिना यह सम्भव नहीं है। उत्साहसे भजनको अभ्यास करते रहैं। यह सब आगे

चलकें श्रीगुरुकृपासौं स्वतः ही होय है।

वासनासे बचनेके लिये शुद्ध द्रव्य एवं निरन्तर भजन

प्रश्न— हमारे खर्चके लिये रुपये आवै हैं, उनका उपयोग कैसे करें, जिससे संसार-वासनाका प्रभाव न

श्रीभगवद्भजनमें लग जाय तौ शीघ्र ही भगवान् प्रसन्न हैकें वाकूँ अपनाय लेवें हैं। यह समय श्रीभगवत्प्राप्तिके

यह धन मातृभूमिके लिये है संख्या ८ ] मनःसंयमकौ सुगम उपाय पडे ? उत्तर—वा द्रव्यमेंसौं कुछ निकालकैं सेवामें लगाय जैसे घरमें सब सदस्य एक घरके बड़े-बूढ़ेके दैवेसों सांसारिक वासनानको प्रभाव नायँ परै तथा २४ आज्ञाके अनुसार चलें तौ वा घरकी समुचित उन्नति होय घण्टे श्रीभगवन्नाम, भजन, कीर्तनमें ही लगौ रहै, जासौं है। याही प्रकार गुरुकी आज्ञानुसार ही साधकके शरीर, मन खाली न रहन पावै तौ आप-ही-आप सब ठीक इन्द्रिय, मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कारकी समस्त क्रियाएँ हों तौ साधककी अति शीघ्र उन्नति होय है, साधकके लिये है जायगौ। अटके रहौ केवल इनमें। इन्द्रिय-संयम तथा मनकौ संयम अति ही सुगम बन जाय मन:संयम प्रश्न—मन कैसे वश में हो? है। उत्तर—अभ्याससे सब हो जायेगा। धीरे-धीरे इनकी प्राप्तिकी तीव्र लालसा अभ्यास करें, घबड़ाय नहीं। श्रीभगवत्कृपापै पूरौ विश्वास या पथमें कठिनाई तबहीतक है, जबतक इनकी करकें निश्चिन्त हैकें श्रीसद्गुरुद्वारा बतायी भयी विधिके प्राप्तिकी तीव्र लालसा नहीं बनी। इनके लिये मनमें तडफन अबही उत्पन्न नहीं भई। अबही संसार सुहाय है। अनुसार भजनमें लगैं। संसारी संबंध एवं व्यवहार-निषेध मनःसंयमकौ उपाय साधककुँ संसारसों जितनौ कम-सों-कम व्यवहार इनकी प्राप्तिकी लालसा, संसारसौं पूर्ण वैराग्य करनौ परै उतनौ ही उत्तम। श्रीविहारीजीके दर्शनके होयवेसौं सबरौ समय, समस्त इन्द्रियाँ एवं मन भजनमें साथ-ही-साथ सप्ताहमें एक-दो बार बाजारको काम लगवे लगेगौ तथा या मार्गमें कोई विघ्न नायँ आय सकै है। या मार्गमें कोई विघ्न केवल संसारकौ अच्छौ लगनौ कर लियौ करें। तुम्हारी लगन उत्तम है। नाम-जप अधिकाधिक करें तथा श्रीभगविच्चन्तन करें। व्यर्थ-चिन्तन तनिक ह् संसारसों वैराग्य तथा श्रीभगवत्प्रेम-प्राप्तिकी तीव्र न होन पावै। लालसा हैवेपै तौ विघ्न हू साधककूँ या पथमें दृढ़ता ही इनकी प्राप्तिकी लालसा बढ़ानी चाहिये। यह प्रदान करें हैं। लालसा ही सब कराय लेगी। साधकके साधनमें सहायक कर्तव्य केवल श्रीभगवत्प्रेमी जननसौं दृढ़ सम्बन्ध, संसारमें श्रीभगवच्चिन्तन-भजन बढानौ, संसारी सम्बन्धन कूँ घटानौ, काहूसौं विरोध नहीं। कहूँ आसक्ति नहीं, व्यवहारमात्र तथा काहसौं विरोध और कहँ आसक्ति न

परम राष्ट्रभक्त चन्द्रशेखर आजाद सशस्त्र क्रान्तिके द्वारा विधर्मी-विदेशी अंग्रेजोंके चंगुलसे भारतको मुक्त करानेके अभियानमें जुटे हुए थे। शस्त्रास्त्र खरीदनेके लिये धनकी आवश्यकता थी। उसके लिये सरकारी खजानेको लूटकर धन इकट्ठा किया गया।

एक दिन उस धनमेंसे कुछ रुपये निकालकर उनके साथीने कहा—'यह माताजी (आजादजीकी माता, जो उन दिनों दाने-दानेको मोहताज थीं )-के पास पहुँचाये देता हूँ।' यह सुनते ही नैतिकताके संस्कारोंमें

पले-बढ़े आजादने गुर्राकर कहा—'खबरदार, यह धन मातृभूमिकी स्वाधीनताके पुनीत कार्यके लिये इकट्ठा किया गया है। इसमेंसे एक नया पैसा भी मेरी माताजीके काम नहीं आयेगा। मेरी माताजी इस प्रकारके

धनका प्रयोगकर पापकी भागी क्यों बनेंगी?'

निन्दा महापाप ( श्रीअगरचन्दजी नाहटा ) प्रत्येक मनुष्य चाहता है कि उसकी प्रशंसा हो। दूसरोंकी निन्दा करता है, जिससे उसे तनिक भी लाभ कोई भी व्यक्ति अपनी निन्दा सुननेको तैयार नहीं, पर नहीं होता; अपितु बहुत बड़ी हानि होती है। जिसकी दूसरोंकी निन्दा करनेमें हर व्यक्ति तैयार मिलता है। भी निन्दा की जाती है, उससे स्वाभाविक वैर-विरोध **'आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्'** इस महान् बढता है, प्रीति और मैत्री टूट जाती है। वह उसे विरोधी आदर्श वाक्यके अनुसार मनुष्यको वैसा व्यवहार दूसरोंके मानकर बदला लेनेका भी प्रयत्न करता है, फिर चाहे प्रति नहीं करना चाहिये, जिसे वह अपने प्रति होना नहीं सुयोग न मिलनेके कारण वह उसमें सफल न हो सके। चाहता। अर्थात् जब हम दूसरोंद्वारा की गयी अपनी निन्दक व्यक्तिको कोई भी अच्छा नहीं मानता; क्योंकि निन्दाको बुरा समझते हैं, सहन नहीं कर सकते, तब हमें निन्दा एक बुरी आदत है। आज वह किसी एक भी दूसरोंकी निन्दा नहीं करनी चाहिये। जैन आगमोंमें व्यक्तिकी निन्दा करता है तो कल वह दूसरेकी भी निन्दा निन्दकके लिये कहा गया है कि वह पीठका मांस करेगा। आज किसी दोषी व्यक्तिकी निन्दा करता है तो खानेवाले हैं अर्थात् पीठ-पीछे दूसरोंकी बुराइयोंको वह कल अपनी उस बुरी आदतके कारण या स्वार्थभंग होनेसे निर्दोष व्यक्तिकी भी निन्दा कर बैठेगा। इस कहकर वह उनके दिल दुखानेवाला है। अत: निन्दा निन्दासे उस व्यक्तिके 'अहं' को ठेस पहुँचेगी, जिसकी एक तरहसे हिंसाका ही एक प्रकार है; क्योंकि तन, मन, वचनसे किसीका भी किसी तरहसे दिल दुखाना, दिलको वह निन्दा करता है; अतएव हानि तो अनेक तरहसे होती या शरीरको चोट पहुँचाना हिंसा है। ही है, लाभ कुछ भी नहीं होता। यदि किसीके संसारमें जितने भी प्राणी हैं, सभीमें कुछ गुण और वास्तविक दोषोंकी वह निन्दा करता है तो भी उसकी कुछ दोष रहते हैं। सर्वथा निर्दोष तो परमात्मा या निन्दासे उस व्यक्तिके दोषोंका सुधार नहीं होगा और परमेश्वर माना जाता है। शेष सभीमें गुणोंके साथ दोष यदि किसीकी झुठी निन्दा कर देता है तब तो वह महान् पाप है ही। दूसरेके दोषोंकी अधिक चर्चा करना, अपनेमें भी रहे हुए हैं। किसीमें गुणोंका आधिक्य है तो किसीमें उन दोषोंका प्रादुर्भाव करना है। इसलिये सभी महापुरुषोंने

दोषोंका। जिसे हम एकदम दोषोंका भण्डार कहते हैं, उसमें भी कोई-न-कोई गुण या विशेषता खोज करने या ध्यान देनेपर अवश्य मिलेगी। इसलिये ज्ञानियोंने कहा है कि निन्दा या आलोचना करनी हो तो अपने दोषोंकी करो, जिससे वे दोष कम हो जायँ या नष्ट हो जायँ। दोषोंके प्रति अरुचि होना, दोषोंको दोषके रूपमें समझना और दोषोंके निवारणमें प्रयत्नशील होना—यही गुणवान् बननेका सरल उपाय है। जितने-जितने अंशोंमें दोष कम होंगे, उतने ही अंशोंमें गुण प्रकट होंगे। मनुष्य गुणी बनना चाहता है, जिससे लोग उसकी प्रशंसा करें; पर दुर्व्यसनों और दोषोंसे छूटनेका पुरुषार्थ नहीं करता, यही उसकी सबसे बड़ी कमी है। इतना ही नहीं, मनुष्य इससे विपरीत मार्गपर भी

जै कोउ निंदे साधु कूँ, संकट आवै सोय।

नरक माँय जामें मरे, मुक्ति कबहुँ न होय॥

लोक बिचारा निंदई, जिन्ह न पाया ज्ञान।

राम नाँव राता रहे, तिनहिं न भावे आन॥

कबीर घास न निंदिये, जो पाँउ तिल होइ।

उड़ि पड़ै जब आँख में खरी दुहेला होइ॥

निन्दाको महापाप बतलाया है। संत कबीर कहते हैं-

दोष पराये देख कर, चल्या हसंत हसंत।

अपने च्यंति न आवई, जिनकी आदि न अंत॥

िभाग ९३

दुर्व्यसनों और दोषोंसे छूटनेका पुरुषार्थ नहीं करता, यही अर्थात् 'मनुष्य दूसरोंके दोष देखते हुए हँसता है, उसकी सबसे बड़ी कमी है। पर अपने दोषोंकी ओर तनिक भी ध्यान नहीं देता, जिन इतना ही नहीं, मनुष्य इससे विपरीत मार्गपर भी दोषोंका आदि-अन्त ही नहीं है। जो व्यक्ति किसी Hindwism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Ayinash/Sha चलती है। वह अपनी अलिचिना योगिनन्दी न करके

संख्या ८ ] निन्दा महापाप ३७	
\$	**************************************
मिलेगा, वह नरकमें जन्मेगा और मरेगा, उसे मुक्ति कभी	'समय सुन्दर' कहई निंदा न कर जो,
नहीं मिलेगी। संत कबीर कहते हैं कि अपने पैरों-तले	पर-गुण देखि हरख मन धर जो॥
पड़े घासकी भी निन्दा न करे; क्योंकि वह छोटा-सा	(२)
तिनका भी यदि उड़कर आँखमें पड़ जायगा तो तुम्हें	निंदा मत करज्यो कोई नी पारकी रे, निंदानै बोल्याँ महा पाप रे।
बहुत दु:ख होगा।' बेचारे अज्ञानी जीव दूसरोंकी निन्दा	वैर बिरोध बाधिह घणा रे, निंदा करता न गिणै माई बाप रे॥
करते हैं। वास्तवमें उन्हें उसके महान् दोषका ज्ञान नहीं	दूर बलतीं काँ देखो तुम रे, पगमां बलती देखो सब कोई रे।
है। रामके नामको रटनेवालेको तो दूसरेकी निन्दा कभी	परनां मैलमा धोया लुगडा रे, कहौ किम ऊजला होइ रे॥
रुचिकर हो ही नहीं सकती।	आपु सँभालो सबको आपणो रे, निंदानी मूको परि टेव रे।
हम दूसरोंकी निन्दा न करें, संतोंने केवल इतनी	थोड़ा धणा अवगुणै सब भरया रे, केहना नलिया चूयै करवा नैव रे॥
ही शिक्षा नहीं दी, इससे आगे बढ़कर उन्होंने यह	निंदा करइ ते थाय नारकी रे, तप जप कीधुँ सब जाई रे।
भी कहा है कि तुम्हारी निन्दा करनेवालोंके प्रति भी	निंदा करो तो करजो आपणी रे, जिम छुटक वारंउ थाय रे॥
तुम द्वेष या घृणा न करो। वे अज्ञानी व्यक्ति स्वयं	गुण ग्रज्यो सहुको तणो रे, जिहं मां देखउ एक बिचार रे।
ही अपने पैरोंपर कुल्हाड़ी मारते हैं। अत: वे करुणाके	कृष्ण परइ सुख पामस्यो रे, 'समय सुन्दर' कहइ सुखकार रे॥
पात्र हैं, घृणा और द्वेषके नहीं। यदि हम उनके द्वारा	महात्मा बुद्धने कहा है—'जो दूसरोंके अवगुण
की जानेवाली निन्दाके प्रति ध्यान न दें तो हमारे	बखानता है, वह अपना अवगुण बखानता है।' महाभारतमें
मनमें कोई बुरा भाव उत्पन्न नहीं होगा। निन्दक तो	कहा है—'दुर्जनोंको निन्दामें ही आनन्द आता है। सारे
बिना कुछ लिये ही हमारे पापरूपी मैलको धोकर	रसोंको चखकर कौआ गंदगीसे ही तृप्त होता है।'
हमें निर्मल बनाता है। हमारी जिन बातोंकी वह	तामिलमें कहा गया है—'निन्दक और जहरीले साँप
निन्दा करता है, यदि वे दोष हमारेमें हैं तो उस	दोनोंके दो-दो जीभें होती हैं।' इसमाइल इबन् अबीबकरने
व्यक्तिका हमें उपकार ही मानना चाहिये कि उसने	कहा है—'सारे संसारमें विवेकभ्रष्ट वह आदमी है, जो
हमारे दोषोंको बताकर हमें सजग कर दिया, दोषोंके	लोगोंकी निन्दामें दत्तचित्त रहता है, जैसे मक्खी रुग्ण
दूर करनेका मौका दिया। इसीलिये संतोंने कहा है	स्थानोंपर ही बैठा करती है।'
कि निन्दकको दूर न करके अपने नजदीकमें बसाओ,	निन्दा एक जघन्य पाप है और एक भयंकर अभिशाप
उससे द्वेष न कर उसका आदर करो। संत कबीरने	है। निन्दासे जितनी हानि स्वयं निन्दककी होती है, उतनी
इसी भावको नीचेके पद्योंमें बड़े सुन्दर ढंगसे कहा	हानि उन व्यक्तियोंकी नहीं होती, जिनकी निन्दा की जाती
है—	है। वे व्यक्ति यदि उदार और समझदार हों तो निन्दकके
निंदक नियरे राखिये, आँगन कुटी छवाय।	द्वारा अपने दोषोंकी चर्चा सुनकर निरन्तर अपना सुधार
बिन साबुन बिन पानियाँ, निरमल करै सुभाय॥	करते रहते हैं और एक दिन नितान्त निर्दोष और निष्पाप
निंदक दूर न कीजियै, दीजै आदर मान।	बन जाते हैं। यदि वे व्यक्ति क्षुद्राशय होते हैं तो वे बदलेमें
निरमल तन, मन, सब करै बक बक आन हि आन॥	अपने निन्दककी निन्दा करने लगते हैं और स्वयं भी
महाकवि 'समय-सुन्दर'ने अपने निन्दा-परिहार	निन्दक बन जाते हैं। अपने-अपने निन्दकोंकी निन्दा कर-
गीतद्वेयमें बड़ा ही सुन्दर प्रबोध दिया है—	करके स्वयं भी निन्दक बन जानेसे ही, संसारमें निन्दकोंकी
(१)	संख्या इतनी अधिक हो गयी है। निन्दा कभी भी सहायता
निंदा न कीजै जीव पराई, निंदा पापई पिंड भराई॥	या सुधारके भावसे नहीं की जाती। अपितु क्षुद्राशयता या
निंदक निश्चय नरकिह जाई, निंदक चौथउ चंडाल कहाई॥	बदनाम करनेकी दृष्टिसे की जाती है। निन्दककी दृष्टि
निंदक रसना अपबित्र होई, निंदक मांस भक्षक सम दोई॥	किसीके गुणोंपर नहीं, दोषोंपर ही पड़ती है। निन्दक

दोषोंका ही दर्शन करता है, दोषोंका ही बखान करता है निन्दक और समालोचकमें भी अन्तर है। जो ईर्ष्या-

और दोषोंका ही चिन्तन करता है और जो जैसा देखता, बोलता, सुनता और सोचता है, वह स्वयं वैसा ही बन जाता है। दूसरोंके दोषोंका दर्शन, वर्णन, श्रवण और

चिन्तन करते-करते निन्दक स्वयं दोषोंकी खान बन जाता है, वह स्वयं दोषोंसे भरपूर भर जाता है।

कई व्यक्ति कहा करते हैं कि 'किसीके वास्तविक

दोषोंका वर्णन करनेमें क्या बुराई है ? वह तो सच्ची बात

है, निन्दा नहीं।' पर यदि किसीके दोषोंको सुधरवानेकी

हमारी भावना है तो हम उन दोषोंका प्रकाशन दूसरोंके

आगे क्यों करें ? उसी व्यक्तिको ही एकान्तमें प्रेमपूर्वक क्यों न समझायें ? यदि हम वैसा ही करते हैं तो वास्तवमें वह एक उपकारका काम है, पर साधारणतया उस

परम पुनीत साधना भी है। आस्तिक, धर्मात्मा, निरभिमान, अनहंकार, अनासक्त, नि:स्पृह, निर्मल, साधनाशील, बहुज्ञ व्यक्तिके सामने उसके दोषोंको कहते हमें संकोच या और बहुश्रुतजन ही समालोचकके पुनीत आसनको सुशोभित भय होता है और दूसरोंके सामने मूल व्यक्तिके परोक्षमें कर सकते हैं। सच्चा समालोचक बनना एक कठिन

बढ़ा-चढ़ाकर उसके दोषोंका उद्घाटन करते हैं। यह निन्दा ही है। निन्दा और समालोचनामें बडा अन्तर है, निन्दा व्यक्तिकी की जाती है और व्यक्तिगत द्वेषके

कारण की जाती है। समालोचना कृति, रचना, सिद्धान्त, मन्तव्य और मान्यताकी की जाती है। ईर्ष्या-द्वेषसे रहित होकर सदाशयताके साथ ही की जाती है।'

हम अपने दोषोंकी करें, दूसरोंके तो गुण ही ग्रहण करें। 'परायी निन्दा करना महापाप है'। इस वाक्यको सदा ध्यानमें रखें।

-मौन व्याख्यान-

सिद्धि है।

एक दिनकी बात है, योगिराज गम्भीरनाथ अपने कपिलधारा पहाड़ीवाले आश्रममें अत्यन्त शान्त और परम गम्भीर मुद्रामें बैठे हुए थे। वे आत्मानन्दके चिन्तनमें पूर्ण निमग्न थे। उसी सयम उनके पवित्र दर्शनसे अपने-

द्वेषके वशीभृत होकर किसीकी व्यक्तिगत निन्दा करता है,

वह निन्दक है और निष्पक्ष होकर सदाशयताके साथ

शालीनतापूर्वक किसीकी कृति, रचना, सिद्धान्त, मन्तव्य

या मान्यताकी विवेचना करता है, उसे समालोचक कहते

हैं। जब समालोचक समालोचना करता हुआ पक्षपात या

द्वेषके कारण निराधार और मिथ्या दोषारोपण करके सम्बन्धित

व्यक्तिके व्यक्तित्वपर आक्रमण करता है, तब वह समालोचक

समालोचक न रहकर निन्दक बन जाता है और उसकी

साधना है, तो सच्ची समालोचना करना एक अलौकिक

संक्षेपमें लिखनेका सारांश यही है कि आलोचना

समालोचना एक परमोत्कृष्ट कला ही नहीं है, एक

समालोचना समालोचना न होकर निन्दा हो जाती है।

आपको धन्य करनेके लिये कुछ शिक्षित बंगाली सज्जन आ पहुँचे। उन्होंने विनम्रतापूर्वक योगिराजसे उपदेश

भाग ९३

देनेके लिये निवेदन किया। योगिराजके अधरोंपर मुसकानकी मृदुल शान्ति थी; उनकी दुष्टिमें कल्याणप्रद

आशीर्वादका अमृत था; उन्होंने बड़ी आत्मीयतासे उन सज्जनोंको आसन ग्रहण करनेका संकेत किया।

सज्जनोंने उपदेशके लिये बड़ा आग्रह किया; योगिराजकी विनम्रता मुखरित हो उठी—'वास्तवमें मैं

कुछ भी नहीं जानता, आपको मैं क्या उपदेश दूँ।' आगत सञ्जन महापुरुषकी विनम्रतासे बहुत प्रभावित

हुए, पर उनका यह दृढ़ विश्वास था कि बाबा गम्भीरनाथ आध्यात्मिक उन्नतिकी पराकाष्ठापर पहुँचे हुए

हैं। अतएव उनके हृदयमें योगिराजके श्रीमुखसे उपदेश श्रवण करनेकी उत्सुकता कम न हो सकी। उन्होंने अपना आग्रह फिर उपस्थित किया और योगिराजने भी विनम्रताके साथ अपने पहले उत्तरको दुहरा दिया। उनके उत्तरमें किसी प्रकारका दम्भ या दिखावा नहीं था; योगिराजने मौन संकेत किया कि 'यदि वे वास्तवमें जिज्ञासु हैं तो मेरे आचरणको देखें तथा सत्य—वस्तु-तत्त्वकी खोज अपने भीतर करें।'

दण्डी स्वामी श्रीकेवलाश्रमजी महाराज संख्या ८ ] दण्डी स्वामी श्रीकेवलाश्रमजी महाराज संत-चरित-( श्रीआगेरामजी शास्त्री ) दण्डी स्वामी श्रीकेवलाश्रमजीका जन्म एक अति चलो। जहाँ सर्पने काटा था, वहाँ नीला एवं बहुत बडा निर्धन ब्राह्मण-परिवारमें कुरुक्षेत्र भूमिके अन्तर्गत जिला निशान पड़ गया था। कहा—ठीक हो जायगा। चिन्ता जीन्दमें रामहृद (रामराय)-में हुआ था। वे बाल ना करो, बहुत आग्रह करनेपर भी अस्पताल नहीं गये। ब्रह्मचारी और बहुत कम पढे-लिखे थे, परंतु संतोंके कहने लगे, 'अभी मेरी मृत्यू नहीं है। तुम चिन्ता न मुखसे सुने शास्त्रोंपर विश्वास करते थे। ब्रह्मचारी जीवन करो'। कभी भी हमने उनको क्रोध आदि करते हुए नहीं उन्होंने अपने जन्म-स्थान रामरायमें ही माता कृष्णा देखा। गंगास्नान, गोसेवा, भजन उनके नित्यके कार्य थे। आश्रममें अनेक दण्डी स्वामी महात्मा रहते थे। उनमें देवीके आश्रममें बिताया। माताजीके देह त्याग देनेके बाद उनको कृष्णाधाम आश्रम रामराय जिला जीन्द बहुत-से अतिवृद्ध महात्मा भी थे। वे उनकी नित्य-प्रति हरियाणाकी गद्दीपर बिठा दिया गया, परंतु मात्र एक स्वयं सेवा करते थे। बीमार होनेपर सभी महात्माओंकी माहके बाद ही वे रातको आश्रमको छोड ऋषिकेशमें स्वयं सेवा करते थे। आकर संन्यास लेकर मौन धारण करके रहने लगे। वर्ष १९८७ में श्रीस्वामीजी हरियाणा गये थे। वहाँ आश्रमके लोग ढुँढते रहे। हरिद्वारमें भी उनका कृष्णाधाम एक पागल कृत्तेने काट लिया। उनको अस्पताल लेकर आश्रम 'खडखडी' के नामसे प्रसिद्ध है। वहाँपर उन्होंने गये, वहाँपर संयोगसे कुत्तेके काटनेके उपचारसम्बन्धी देवीस्वरूप शास्त्रीजीको प्रबन्धक बनाया था। इंजेक्शन नहीं मिले। दुबारा बहुत प्रयास किया गया, पर वे अस्पताल नहीं गये। कहा—यदि प्रभु चाहते तो मैं शास्त्रीजीने उनको ढूँढ़ लिया तथा उनसे आग्रह किया, जैसे आप ऋषिकेशमें रह रहे हैं, वैसे ही आप अस्पताल गया था। इंजेक्शन मिल जाता, उनकी अब अपने आश्रममें रहिये। इसपर वे हरिद्वार आ गये। यही इच्छा है। वे जीवनमें बीमार पडते तो कभी दवाई दुर्भाग्यसे देवीस्वरूप शास्त्रीजीका निधन हो गया। नहीं लेते। अपने-आप ही काढा आदि बनाकर पी लेते शास्त्रीजीके निधनके बाद आश्रमको स्वामी केवलाश्रमजी थे। दवाई कभी नहीं ली। महीनोंके बाद हरियाणासे महाराजको सँभालना पडा। वे नित्य-प्रति गंगा-स्नान आया था। जैसे मेरी आवाज सुनी, कमरेसे बाहर आकर करते थे। आश्रमके अधिष्ठाता होते हुए भी भिक्षा करके कहने लगे—भाई, आज जितनी दवाई देनी है, दे दे। भोजन करते थे। उत्तरी हरिद्वारमें उस समय पश्-जिस डॉक्टरको दिखाना हो दिखा ले। नहीं तो कहेगा अस्पताल नहीं था। जिस किसी आश्रमकी गाय बीमार कि स्वामीजीको दवाई दिला देते तो बच जाते। अब तू हो जाती, वे लोग स्वामीजीको बुलाकर ले जाते। वे अपने मनकी कर ले। गायके स्वस्थ होनेकी दवाई एवं टोटके जानते थे। कोई उस समय आश्रममें गाडी नहीं थी। हम टैम्पो भी व्यक्ति बीमार गायके उपचारके लिये उन्हें बुलाने आता करके उनको जी०डी० अस्पतालमें ले गये। डॉक्टरने तो वे भजन छोड़कर तुरन्त उसके साथ चले जाते। देखते ही कह दिया पागल कुत्तेके काटनेसे होनेवाली एक दिन मैंने कहा, भजन करनेके बाद चले बीमारी हो गयी है। अब ये बच नहीं सकते। हम वापस आश्रममें ले आये और सबसे पीछेके कमरेमें लिटा जाना। उन्होंने कहा गोसेवा भी भजन ही है। वे आश्रमकी गाय स्वयं चराने जाते थे। एक दिन उनको दिया। सभी आश्रमवाले पता लगते ही आ गये। उनके साँपने काट लिया। आकर कहने लगे साँपने मुँह लगा प्रति सभी लोग श्रद्धा रखते थे। तीन-चार आश्रमवालोंने दिया। साँपका दोष नहीं था। मेरा ध्यान गायकी तरफ अपने स्तरसे तीन-चार डॉक्टर, जो उस समय बहुत था। मेरा पैर साँपपर पड गया। हमने कहा, अस्पताल प्रसिद्ध थे, बुला लिये। सभी डॉक्टरोंने एक मतसे

भाग ९३ कहा—ये ७२ घंटे तड़पेंगे, दीवारोंपर सिर मारेंगे, काटने पण्डितजीने कहा—िकस विषयका मुहूर्त देखूँ? कहने दौड़ेंगे, जिसको भी इनके नाखून, लार या दाँत लग लगे, मेरा मुहूर्त तो ५ बजेका है। इससे पहले मरनेका जायगा, वे भी ऐसे ही मरेंगे। अतः तुरन्त इसको मुहूर्त बनता हो तो मैं पहले चला जाऊँ। जागेराम शास्त्री बहुत दुखी हो रहा है। पण्डितजी कुछ नहीं जी०डी० अस्पतालमें दाखिल कराओ। जब डॉक्टर लोग इस प्रकारकी बात कर रहे थे, तो श्रीस्वामीजीने एक बोले, रोने लग गये, ठीक ५ बजे एक सन्त आये। वे छात्रको भेजकर मुझे बुलवाया तथा कहा-भाई, इन आकर रोने लगे। स्वामीजी कहने लगे, सन्तजी! क्यों डॉक्टरोंकी बातोंमें नहीं आना, मेरे कारण आश्रममें कोई रोते हो, मुझे कहने लगे—तेरे आश्रममें सन्तजी आये हानि नहीं होगी। मुझे सायं ०५ बजेतक जीना है। अगर हैं। इनको दूध पिला। यह कहकर फिर 'ओम्-ओम्' तेरा दिल मानता है तो मुझको आश्रममें ही मरने दे, नहीं कहने लगे। इतनेमें सन्तको गेटतक छोडकर आया। तो मेरेको गंगाजीके किनारे डाल दो। अस्पताल नहीं उस समय उनके पास दण्डी स्वामी श्रीमुरारी भेजना। वे मात्र 'ओम्-ओम्' बोल रहे थे। जब उनको आश्रम तथा दण्डी स्वामी श्रीरामानन्द आश्रम सेवामें थे। बहुत अधिक कष्ट होता था तो 'ओम्-ओम्' करके स्वामीजीके कहनेपर उन्होंने उन्हें नीचे आसन बिछाकर दीवारकी तरफ मुख कर लेते, फिर दर्द कम होते ही बैठाया। पद्मासन उन्होंने स्वयं लगा लिया। जब कमण्डलुसे 'ओम-ओम' करके मुँह इधर कर लेते। उनको गंगाजल पिला रहे थे तब मैंने कहा-नीचे क्यों डॉक्टरोंने कहा था कि पानी देखते ही बेहोश बिठाया? अभी मैं पूरा बोल भी नहीं पाया कि उन्होंने 'ओम-ओम्' का उच्चारण किया और गंगाजल मुखमें हो जायँगे, परंतु उन्होंने एक कमण्डलु गंगाजल पीया। उसी दिन परम पूज्य शंकराचार्य दण्डी स्वामी लेते ही उन्होंने प्राण छोड़ दिये। स्वामी मुरारी आश्रमजी माधवाश्रमजी महाराज हरिद्वारमें भागवतकी कथा कर कहने लगे-ये तो सदाके लिये ही बैठ गये। उस रहे थे। वे भी इनके अन्तिम दर्शनोंके लिये आये और समयतक तीनों डॉक्टर आश्रममें ही थे। डॉक्टरोंने स्वयं उन्होंने कथामें कह दिया ओ समाजके लोगो! अगर कहा कि ये हमारे मेडिकल साइंसके एकदम विपरीत तुम्हें भजनका प्रभाव देखना है तो कृष्णाधाम आश्रम अद्भुत घटना घटी है। खडखडी हरिद्वारमें चले जाओ। अगर ये बीमारी तुम एक डॉक्टर बंगाली सिपाहा नामसे थे। कहने किसीको भी होती तो तड़पते, रोते, बिलखते, परंतु लगे—मैंने जीवनमें ऐसी घटना कभी नहीं देखी। तीनों एक सन्त इस बीमारीसे संघर्ष कर रहे हैं। सिवाय डॉक्टरोंने स्वामीजीके शरीरको प्रणाम किया। उस 'ओम्'के एक शब्द नहीं बोल रहे। शंकराचार्यजीके घटनासे यह सिद्ध होता है। कर्मके भोग तो हर हालतमें सभी महापुरुषोंको भोगने पड़ते हैं। कुत्तेका काटना तथा इतना कहनेके बाद कृष्णाधाममें मेला लग गया। हजारों लोग आते उनके दर्शन करके चले जाते, वह बीमारी होना तो कर्मके भोग निश्चित थे। परंतु गौसेवा, श्रीगंगासेवा, सन्त-सेवा, भगवद्भजन डॉक्टरोंके उनका कमरा अन्तिम समयतक खुला रहा। दो महात्मा उनकी सेवाके लिये उनके पास रहे, जो लोग आ रहे अनुसार मेडिकल साइंसको मात दे सकते हैं। आज थे। उनके पैर छूकर जाते, उनसे किसीको भय नहीं श्रीदण्डी स्वामी केवलाश्रमजी महाराजके मात्र आशीर्वादसे लगा और ना ही वे 'ओम्-ओम्'के सिवाय कुछ कृष्णाधाम अन्नक्षेत्रमें सैकडों महात्मा और जरूरतमन्द बोले और उन्होंने आने-जानेवालोंका ध्यान भी नहीं नि:शुल्क भोजन करते हैं। दान देनेवाले भी स्वत: आते किया। उस समय मेरठसे पं० फूलचन्दजी आये हुए हैं और खानेवाले भी स्वत: आते हैं। यह भगवान्के थे। उनको बुलाकर कहने लुगे पण्डितजी महूर्त देखो। भजन, गोसेवा गंगासेवा सन्तर्सेवाका अनुपम प्रभाव है। Hinduism Discord Server https://disc.gg/dharma/| MADE WITH LOVE BY Avinash/Sha

परिस्थितिका सदुपयोग संख्या ८ ] परिस्थितिका सदुपयोग प्रेरणा-पथ (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज) प्रत्येक परिस्थिति प्राकृतिक न्याय है। उसके उसी प्रकार हम लोग सदैव इस बातका ध्यान रखें कि सद्पयोगमें ही सभीका हित है, किंतु हमसे भूल यह कोई परिस्थिति सचमुच ऐसी है ही नहीं, जिसके बिना होती है कि हम परिस्थित-परिवर्तनके लिये अथवा हम नहीं रह सकते, या जो हमारे बिना नहीं रह अनुकूल परिस्थितिको सुरक्षित बनाये रखनेके लिये सकती। हर परिस्थिति हमारे बिना रह सकती है और प्रयत्नशील रहते हैं। यद्यपि कोई भी परिस्थिति सर्वांशमें हर परिस्थितिके बिना हम रह सकते हैं। लेकिन जब. अनुकूल नहीं होती और न सर्वांशमें प्रतिकूल ही होती 'परिस्थितिमें ही जीवन है'—ऐसा विश्वास होता है, है। प्रत्येक परिस्थितिमें जो करना चाहिये, उसको तब प्रतिकृल परिस्थितिका भय पैदा हो जाता है और करनेकी सामर्थ्य विद्यमान होती है और जो नहीं करना अनुकूल परिस्थितिकी आशा उत्पन्न हो जाती है। हम चाहिये, उसके त्यागकी सामर्थ्य भी रहती है, परंतु हम चाहते हैं कि अनुकूल परिस्थिति बनी रहे और तब तो इस बातको भूल जाते हैं कि प्रस्तुत परिस्थितिमें क्या आप यह कह सकते थे कि आपकी बात ठीक है। करना चाहिये। जो करते रहते हैं, बस, उसीको पकडे आप कहें कि कोई-न-कोई परिस्थित तो रहती ही है रहते हैं। नहीं तो, यह करना ही है, परंतु कर पाते नहीं तो जो परिस्थित रहती है, उसमें हमें क्या करना है? और फिर पश्चात्ताप करते हैं। ऐसी परिस्थितिमें एक इस बातको अपने सामने रखना चाहिये। वह चाहे जैसी भी परिस्थिति हो। जो शक्ति आप परिस्थितिको बातका निर्णय करना है और वह हरेक व्यक्तिको अपने-आप करना है, दूसरोंके द्वारा नहीं कि कोई भी परिस्थित परिवर्तन करनेके लिये लगाते हैं, यदि वही शक्ति आप क्या ऐसी हो सकती है, जिसके बिना हम रह नहीं परिस्थितिके सदुपयोगमें लगा दें तो बड़ी ही सुगमतापूर्वक सकते ? यदि आपको ऐसा मालूम होता हो कि सचमुच परिस्थितियोंसे अतीत जो जीवन है, उसमें या तो श्रद्धा कोई ऐसी परिस्थिति हो सकती है तो सोचिये कि उस हो जाय या उसकी प्राप्ति हो जाय। दोनों ही बातें हो परिस्थितिका वियोग तो नहीं होगा? पर वियोग होता ही सकती हैं। श्रद्धा हो जायगी तो एक नवीन लालसा है। जब वियोग होता है, तब कोई परिस्थिति ऐसी हो जाग्रत् होगी, एक नवीन जिज्ञासा जाग्रत् होगी और ही नहीं सकती, जिसके बिना हम नहीं रह सकते हों। अनुभूति हो जायगी। तब यथेष्ट विश्राम मिलेगा और ये यदि कोई मुझसे यह पूछता कि भाई, तुम ही दो बातें जीवनमें उपयोगी हैं या तो आपको विश्राम आँखोंके बिना रह सकते हो? तो क्या मैं कभी यह मिल जाय या आपके जीवनमें एक ऐसी उत्कट माननेके लिये राजी होता कि मैं आँखोंके बिना रह लालसा जग जाय, जो सभी कामनाओंको खा जाय सकता हूँ ? किंतु देखिये, आँखोंके बिना रह रहा हूँ। और सभी आक्रमणोंपर विजयी हो जाय। पिबन्ति नद्यः स्वयमेव नाम्भः स्वयं न खादन्ति फलानि वृक्षाः। वर्षति नात्महेतोः विभूतयः॥ परोपकाराय सतां निदयाँ स्वयं जल नहीं पीतीं, वृक्ष स्वयं फल नहीं खाते तथा मेघ अपने लिये नहीं बरसता। सज्जनोंकी सम्पत्ति तो परोपकारके लिये ही होती है।

गो-महिमा है। जैसे देवताओंके आचार्य बृहस्पतिजी वन्दनीय हैं, जिस

एक बार नारदजीने ब्रह्माजीसे पूछा-नाथ! आपने बताया है कि ब्राह्मणकी उत्पत्ति भगवान्के मुखसे हुई है;

फिर गौओंकी उससे तुलना कैसे हो सकती है ? विधाता! इस विषयको लेकर मुझे बड़ा आश्चर्य हो रहा है।

ब्रह्माजीने कहा-बेटा! पहले भगवान्के मुखसे महान् तेजोमय पुंज प्रकट हुआ। उस तेजसे सर्वप्रथम वेदकी

उत्पत्ति हुई। तत्पश्चात् क्रमशः अग्नि, गौ और ब्राह्मण—ये पृथक्-पृथक् उत्पन्न हुए। मैंने सम्पूर्ण लोकों और भुवनोंकी रक्षाके लिये पूर्वकालमें एक वेदसे चारों वेदोंका विस्तार किया। अग्नि और ब्राह्मण देवताओं के लिये हविष्य ग्रहण करते हैं और हविष्य (घी) गौओंसे उत्पन्न होता है; इसलिये ये चारों ही इस जगतुके जन्मदाता हैं। यदि ये चारों महत्तर

पदार्थ विश्वमें नहीं होते तो यह सारा चराचर जगत् नष्ट हो जाता। ये ही सदा जगत्को धारण किये रहते हैं, जिससे स्वभावत: इसकी स्थिति बनी रहती है। ब्राह्मण, देवता तथा असुरोंको भी गौकी पूजा करनी चाहिये; क्योंकि गौ सब कार्योंमें उदार तथा वास्तवमें समस्त गुणोंकी खान है। वह

साक्षात् सम्पूर्ण देवताओंका स्वरूप है। सब प्राणियोंपर उसकी दया बनी रहती है। प्राचीन कालमें सबके पोषणके लिये मैंने गौकी सृष्टि की थी। गौओंकी प्रत्येक वस्तु पावन है

और समस्त संसारको पवित्र कर देती है। गौका मूत्र, गोबर, दुध, दही और घी-इन पंचगव्योंका पान कर लेनेपर शरीरके भीतर पाप नहीं ठहरता। इसलिये धार्मिक पुरुष प्रतिदिन गौके दूध, दही और घी खाया करते हैं। गव्य पदार्थ सम्पूर्ण द्रव्योंमें श्रेष्ठ, शुभ और प्रिय हैं। जिसको गायका दूध, दही

और घी खानेका सौभाग्य नहीं प्राप्त होता, उसका शरीर मलके समान है। अन्न आदि पाँच रात्रितक, दुध सात रात्रितक, दही दस रात्रितक और घी एक मासतक शरीरमें अपना प्रभाव रखता है। जो लगातार एक मासतक बिना

गव्यका भोजन करता है, उस मनुष्यके भोजनमें प्रेतोंको

भाग मिलता है, इसलिये प्रत्येक युगमें सब कार्योंके लिये

एकमात्र गौ ही प्रशस्त मानी गयी है। गौ सदा और सब समय धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—ये चारों पुरुषार्थ प्रदान करनेवाली है।

जो गौकी एक बार प्रदक्षिणा करके उसे प्रणाम करता

है, वह सब पापोंसे मुक्त होकर अक्षय स्वर्गका सुख भोगता

प्रकार भगवान् लक्ष्मीपति सबके पूज्य हैं, उसी प्रकार गौ भी वन्दनीय और पूजनीय है। जो मनुष्य प्रात:काल उठकर गौ और उसके घीका स्पर्श करता है, वह सब पापोंसे मुक्त

हो जाता है। गौएँ दूध और घी प्रदान करनेवाली हैं। वे घृतकी उत्पत्ति-स्थान और घीकी उत्पत्तिमें कारण हैं। वे घीकी निदयाँ हैं, उनमें घीकी भँवरें उठती हैं। ऐसी गौएँ सदा मेरे घरपर मौजूद रहें। घी मेरे सम्पूर्ण शरीर और मनमें

स्थित हो। 'गौएँ सदा मेरे आगे रहें। वे ही मेरे पीछे रहें। मेरे सब अंगोंको गौओंका स्पर्श प्राप्त हो। मैं गौओंके बीचमें निवास करूँ।' इस मन्त्रको प्रतिदिन सन्ध्या और सबेरेके

समय शुद्ध भावसे आचमन करके जपना चाहिये। ऐसा करनेसे उसके सब पापोंका क्षय हो जाता है तथा वह स्वर्गलोकमें पूजित होता है। जैसे गौ आदरणीय है, वैसे

ब्राह्मण; जैसे ब्राह्मण हैं वैसे भगवान् विष्णु। जैसे भगवान् श्रीविष्णु हैं, वैसी ही श्रीगंगाजी भी हैं। ये सभी धर्मके साक्षात् स्वरूप माने गये हैं। गौएँ मनुष्योंकी बन्धु हैं और मनुष्य गौओंके बन्धु हैं। जिस घरमें गौ नहीं है, वह

बन्ध्रहित गृह है। छहों अंगों, पदों और क्रमोंसहित सम्पूर्ण वेद गौओंके मुखमें निवास करते हैं। उनके सींगोंमें भगवान्

श्रीशंकर और श्रीविष्णु सदा विराजमान रहते हैं। गौओंके उदरमें कार्तिकेय, मस्तकमें ब्रह्मा, ललाटमें महादेवजी, सींगोंके अग्रभागमें इन्द्र, दोनों कानोंमें अश्विनीकुमार, नेत्रोंमें चन्द्रमा और सूर्य, दाँतोंमें गरुड, जिह्वामें सरस्वती

देवी, अपान (गुदा)-में सम्पूर्ण तीर्थ, मूत्रस्थानमें गंगाजी, रोमकूपोंमें ऋषि, मुख और पृष्ठभागमें यमराज, दक्षिण

पार्श्वमें वरुण और कुबेर, वाम पार्श्वमें तेजस्वी और महाबली यक्ष, मुखके भीतर गन्धर्व, नासिकाके अग्रभागमें सर्प, खुरोंके पिछले भागमें अप्सराएँ, गोबरमें लक्ष्मी, गोमूत्रमें पार्वती, चरणोंके अग्रभागमें आकाशचारी देवता, रँभानेकी आवाजमें प्रजापति और थनोंमें भरे हुए चारों समुद्र

निवास करते हैं। जो प्रतिदिन स्नान करके गौका स्पर्श करता है, वह मनुष्य सब प्रकारके स्थूल पापोंसे भी मुक्त हो जाता है। जो गौओंके खुरसे उडी हुई धूलको सिरपर

धारण करता है, वह मानों तीर्थके जलमें स्नान कर लेता है और सब पापोंसे छुटकारा पा जाता है।[पद्मपुराण]

साधनोपयोगी पत्र संख्या ८ ] साधनोपयोगी पत्र (१) कि रामायणमें इस बातको स्पष्ट करनेमें तुलसीदासजीने राम और शिवमें कोई छोटा-बडा नहीं कोई कमी नहीं रखी है। अत: गम्भीरतापूर्वक विचार प्रिय महोदय! सादर सप्रेम हरिस्मरण! आपका पत्र करनेपर आप स्वयं समझ लेंगे। शेष प्रभुकृपा। मिला। समाचार मालुम हुए, मेरे उत्तरसे आपको सन्तोष (२) हुआ, सो यह आपका सौजन्य है। निर्बीज समाधि और सबीज समाधि रामायणमें भगवान् रामने जगह-जगह शंकरका सादर हरिस्मरण! आपका पत्र मिला, आपके स्मरण किया, यह बिलकुल और सर्वथा सत्य है। प्रश्नोंका उत्तर इस प्रकार है। निर्बीज समाधि उसे कहते भगवान् रामके इष्टदेव शंकर और शंकरके इष्टदेव राम, हैं. जिसमें सब प्रकारके कर्म-संस्कारोंका सर्वथा निरोध यह तो रामायणमें आपको स्थल-स्थलपर मिलेगा, इसमें हो जाता है। इसका वर्णन योगदर्शनके समाधि-पादके मुझे कोई सन्देह नहीं है। अन्तमें आया है। इसीको असम्प्रज्ञातयोग, धर्ममेघ-भगवान् रामने कैलासमें जाकर जो शिवजीसे समाधि, कैवल्यपद, द्रष्टाकी स्वरूप-प्रतिष्ठा आदि नामोंसे योगदर्शनमें कहा है। विवाह करनेके लिये कहा और वरके रूपमें माँग पेश की, यह बिलकुल ठीक है; परंतु वहाँ देखिये शिवजी सबीज समाधिके मुख्य दो भेद हैं—एक सविकल्प, जिसका वर्णन सवितर्क और सविचारके नामसे आया है। क्या कह रहे हैं-इसका विस्तार योगदर्शन-समाधि-पादके सूत्र ४१-४३ नाथ बचन पुनि मेटि न जाहीं॥ में आया है। उसी प्रकरणमें निर्वितर्क और निर्विचारके सिर धरि आयसु करिअ तुम्हारा। परम धरमु यह नाथ हमारा॥ नामसे निर्विकल्प-समाधिका वर्णन है। सिर पर नाथ तुम्हारी॥ लेन-देन, जहाँतक हो, भले मनुष्योंके साथ करना —इसपर तुलसीदासजी क्या कहते हैं— चाहिये तथा कानूनकी पाबन्दी पहलेसे ही कर लेनी प्रभु तोषेउ सुनि संकर बचना। भक्ति बिबेक धर्म जुत रचना॥ प्रसंग देखनेसे यही सिद्ध होगा कि इनमें छोटे-चाहिये, ताकि झगडा न पडे। बनावटी गवाह खडा करना तो झूठ ही है, यह कैसे उचित हो सकता है। बडेकी कल्पना उपासक अपने इष्टके अनुसार कर सच्चा मामला तभी खारिज होता है, जब कोई पहले की सकता है। वास्तवमें कोई छोटा-बडा नहीं है। आपने पूछा कि योगिराज, जिन्होंने हलाहल हुई बुराईका दण्ड मिलनेवाला होता है। शेष प्रभुकृपा। विषका पान किया, वे कौस्तुभमणि और लक्ष्मीको धारण (3) करनेवालेका ध्यान करें अथवा कौस्तुभमणि और लक्ष्मीको 'होइहि सोइ जो राम रचि राखा' धारण करनेवाले भगवान् विष्णु हलाहल विष-पान का तात्पर्यार्थ करनेवालेका ध्यान करें। इसका उत्तर विस्तृत रूपमें प्रिय महोदय! सादर हरिस्मरण। आपका पत्र माँगा। सो इसका असली उत्तर तो ऊपर दे दिया गया मिला, समाचार मालूम हुए। है। आप थोड़ी गम्भीरतासे विचार करेंगे तो मालूम होगा आपने तुलसीदासजीकी यह चौपाई लिखी कि— कि शंकरजी हलाहल-पान करनेमें भी भगवान् रामका होइहि सोइ जो राम रचि राखा। को किर तर्क बढ़ावै साखा।। ही प्रभाव मानते हैं, उसमें वे अपना बल नहीं मानते। सो यह चौपाई नवीन कर्म करनेके लिये नहीं है। तुलसीदासजीने कहा है— यह तो केवल पूर्वकृत-कर्मींके फल-भोगको लेकर है। भाव यह कि मनुष्य फलभोगमें सर्वथा परतन्त्र है। नाम प्रभाउ जान सिव नीको। कालकूट फल दीन्ह अमी को।। अधिक विस्तारकी आवश्यकता इसलिये नहीं है उसको जो सुख या दु:ख जिस प्रकार प्रारब्ध कर्मफलके

अनुसार होता है, वैसा ही होगा। पर नवीन कर्म करनेमें कही है, वह भी ठीक है; क्योंकि 'आत्मा' शब्दका कोई मनुष्य स्वतन्त्र भी है। इसीलिये भगवान्ने मनुष्यको बुराई एक ही अर्थ नहीं होता। गीतामें जो जन्म-मरणसे रहित और भलाईको समझनेके लिये विवेक दिया है। अत: आत्माका वर्णन है, वह विशुद्ध चेतन आत्मतत्त्वका मनुष्यको चाहिये कि जो कुछ करे, विवेकके प्रकाशमें वर्णन है और श्रुतिमें 'आत्म' शब्द निजका वाचक है। करे और वहीं करें जो उसे करना चाहिये, पाप-कर्म जो मनुष्य अपना कर्तव्य-पालन न करके मनुष्य-भूलकर भी न करे, यदि करेगा तो उसकी सारी जीवनको व्यर्थ खो रहे हैं, अपना अध:पतन कर रहे हैं, जिम्मेदारी करनेवालेकी है और उसका दण्ड उसे अवश्य उनको वहाँ 'आत्महत्यारा' कहा गया है। आत्महत्यासे भोगना पड़ेगा; क्योंकि भगवान्ने हरेक मनुष्यके लिये यदि आत्माके नाशकी बात होती तो यह कहना ही नहीं कर्तव्यका विधान कर दिया है और उसे समझनेके लिये बनता कि वे घोर अन्धकारसे भरपूर लोकोंमें जाते हैं। यदि उनका नाश (अभाव) ही हो जाता तो जाता कौन? मानवको विवेकशक्ति भी दे दी है। आपने जो उदाहरण दिये, वे तो ऐसा प्रतीत होता अर्जुन भगवान्का सखा था, यह बात भगवान् और है कि मानो, किसी घबराये हुए कविने भगवान्से स्वयं अर्जुनने भी बार-बार स्वीकार की है, इसमें कोई प्रणयकोपमें प्रार्थना की है। ये कोई शास्त्रीय प्रमाणरूप सन्देह नहीं है। पर भगवान्के उस भयानक स्वरूपको देखकर वह उस सखाभावको भूल गया और भयभीत वाक्य नहीं है। श्रीमद्भगवद्गीता अध्याय ३ श्लोक ३४ से ४३ हो गया। इसीलिये तो भगवान्ने कहा है-यह अद्भुत

में भी स्पष्ट कहा है कि तेरा कर्म करनेमें अधिकार है एवं फलमें अधिकार नहीं है। अत: यह समझना चाहिये कि तुलसीदासजीका कहना फलभोगके विषयमें है, नवीन कर्म करनेके विषयमें नहीं। शेष प्रभुकृपा। अर्जुनका मोह महोदय! सादर हरिस्मरण! आपका पत्र यथासमय मिल गया था। आपकी शंकाओंका उत्तर क्रमसे इस

तकका प्रकरण देखिये। उसमें अर्जुनके पूछनेपर भगवान्ने

इस विषयको स्पष्ट किया है तथा अध्याय २ श्लोक ४७

प्रकार है—

शास्त्रोंमें आततायियोंको मारनेमें पाप नहीं बताया है। इस बातको अर्जुन भी जानता था, पर उसे अपने सामने सब अपने ही कुटुम्बी लोग खड़े दीख रहे थे। अतः मोहके कारण अर्जुनको उनका मारना पापकर्म

मालूम होता था, जिसकी व्याख्या स्वयं अर्जुनने कुलघातसे

होनेवाले परिणामका प्रदर्शन करते हुए की है। भगवान् श्रीकृष्णने गीतामें आत्माको नित्य जन्म-तथा जो कर्म भगवान्के समर्पण कर दिये जाते हैं, उनका मरणसे रहित बताया है, यह बिलकुल सत्य है एवं

जिस ज्ञानको कामसे आवृत बताया है, वह तो विवेक है। जिस ज्ञानसे कामको मारनेकी बात कही है, वह तत्त्वज्ञान है। अत: पूर्वापरके प्रकरणसे ज्ञानका स्वरूप समझ लेना चाहिये। तुलसीदासजीने जो यह कहा है कि कर्मींका फल

भोगना ही पड़ता है, यह कथन सकाम कर्मके लिये ही है। निष्कामभावसे या कर्तापनके अभिमानसे रहित होकर किये जानेवाले कर्मोंका फल भोगना पड़े, ऐसी बात नहीं है। रामायणमें भी निष्काम कर्मोंकी बड़ाई की गयी है

श्रुनिर्में त्यों इंसन्फाइस्टन्स डेसरोंबेन तस्कुरों /खडेक कुलाव का भागाय कि एक एक कि प्रश्नाम एक एक विश्व कि स

िभाग ९३

\*

रूप मैंने तुमपर प्रसन्न होकर दिखाया है। इसे देखकर

कई जगह प्रयोग हुआ है। वहाँ सभी जगह किसी एक

ही अर्थमें उसका प्रयोग हुआ हो, ऐसी बात नहीं है।

कहीं तत्त्वज्ञानीके अर्थमें (३।३३,४३), कहीं विवेकज्ञानके

अर्थमें (३।३९) और कहीं ज्ञानयोगके अर्थमें (३।३)

हुआ है। अत: आप कौन-से श्लोकमें उल्लिखित ज्ञानका

गीताके तीसरे अध्यायमें 'ज्ञान' और 'ज्ञानी' शब्दका

तुम्हें भय और व्यथा नहीं होनी चाहिये।

स्वरूप जानना चाहते हैं, सो लिखियेगा।

संख्या ८ ] व्रतोत्सव-पर्व

## व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०७६, शक १९४१, सन् २०१९, सूर्य दक्षिणायन, वर्षा-ऋतु, भाद्रपद कृष्णपक्ष तिथि नक्षत्र दिनांक

१६ अगस्त

धनिष्ठा दिनमें १०। २५ बजेतक

प्रतिपदा सायं ६। १६ बजेतक | शुक्र

रवि

सोम

बुध

गुरु

शुक्र

शनि

रवि

सोम

मंगल

बुध

गुरु

शुक्र

शनि

रवि

सोम

मंगल

बुध

गुरु

द्वितीया रात्रिमें ८।१९ बजेतक शनि शतभिषा " १।१ बजेतक १७ ,,

पू०भा० " ३। ३८ बजेतक

उ० भा० सायं ६।५ बजेतक

अश्विनी ", १०। २ बजेतक

भरणी 🕠 ११। २१ बजेतक

कृत्तिका " १२।१० बजेतक

रोहिणी 🕠 १२।२८ बजेतक

मृगशिरा 🗤 १२।१८ बजेतक

आर्द्रा 🛷 ११। ४२ बजेतक

पुनर्वसु "१०।४६ बजेतक

आश्लेषा 🤈 ८।४ बजेतक

मघा सायं ६। २७ बजेतक

पु०फा० सायं ४।४६ बजेतक

उ०फा० दिनमें ३।८ बजेतक

हस्त 🕠 ९ । ३५ बजेतक

चित्रा 😗 १२। १४ बजेतक

स्वाती 🕠 ११।८ बजेतक

विशाखा 11 १०। २३ बजेतक

पुष्य 🦙 ९। ३१ बजेतक

मंगल रेवती रात्रिमें ८। १९ बजेतक

१८ ,,

१९ ,,

२० ,,

२१ ,,

२२ ,,

२३ ,,

28 "

२५ ,,

२६ ,,

२७ ,,

२८ ,,

२९ ,,

30 11

सिंह-संक्रान्ति रात्रिमें ३।८ बजे।

दिनमें ८।५९ बजेसे, कज्जलीतीज।

मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि

भद्रा दिनमें ९। १९ बजेसे रात्रिमें १०। १९ बजेतक, मीनराशि

मुल रात्रिमें १०।२ बजेतक, भद्रा रात्रिमें २।३९ बजेसे, श्रीचन्द्रषष्टीव्रत,

चन्द्रोदय रात्रिमें १०।४ बजे, हलषष्ठी (ललहीछठ)।

**भद्रा** दिनमें २।५७ बजेतक, **वृषराशि** रात्रिशेष ५।३३ बजेसे।

उदयव्यापिनी रोहिणी मतावलम्बी वैष्णवोंका श्रीकृष्णजन्मव्रत।

मूल रात्रिमें ९।३१ बजेसे, भद्रा रात्रिमें ८।५१ बजेसे, प्रदोषव्रत।

कन्याराशि रात्रिमें १०।२१ बजेसे, पु०फा० का सूर्य रात्रिमें ११।४९ बजे।

भद्रा रात्रिमें ७। ५५ बजेसे, हरितालिका (तीज) व्रत, वैनायकी

श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रदर्शन निषिद्ध, तुलाराशि रात्रिमें १२।५४ बजेसे।

श्रीराधाष्ट्रमीवृत, महर्षि द्धीचि-जयन्ती, भद्रा दिनमें १।३८ बजेतक,

**भद्रा** दिनमें १।३२ बजेसे रात्रिमें १।५४ बजेतक, **मकरराशि** सायं ६।७ बजेसे,

**लोलार्कषष्ठी-व्रत, वृश्चिकराशि** रात्रिशेष ४। ३४ बजेसे।

महारविवारव्रत, मूल मूल दिनमें १०।३८ बजेतक।

भद्रा दिनमें ७।४५ बजेतक, सिंहराशि रात्रिमें ८।४ बजेसे।

मुल सायं ६ । २७ बजेतक, कुशोत्पाटिनी अमावस्या।

भद्रा प्रात: ६।५० बजेतक, **ऋषिपंचमी।** 

भद्रा रात्रिमें २।२ बजेसे।

**मुल** दिनमें ९।५९ बजेसे।

पद्मा एकादशीव्रत (सबका)।

श्रीवामनद्वादशीव्रत ।

**धनुराशि** दिनमें १०।४० बजेसे।

भद्रा दिनमें २। २४ बजेसे रात्रिमें १। ५५ बजेतक, मिथुनराशि

मूल सायं ६ । ५ बजेसे, संकष्टी ( बहुला ) श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय रात्रिमें ८।५७ बजे।

**पंचक समाप्त** रात्रिमें ८। १९ बजे।

श्रीकृष्णजन्माष्टमी, गोकुलाष्टमी।

दिनमें १२।४४ बजेसे।

जया एकादशीव्रत ( सबका )।

कर्कराशि सायं ५।० बजेसे।

सं० २०७६, शक १९४१, सन् २०१९, सूर्य दक्षिणायन, वर्षा-ऋतु, भाद्रपद शुक्लपक्ष दिनांक मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि वार नक्षत्र

३१ अगस्त

२ ,,

₹ ,,

४

4 ,,

ξ ,,

9

१०

,,

,,

१ सितम्बर

तिथि

तृतीया,, १०।१९ बजेतक

चतुर्थी 😗 १२।८ बजेतक

पंचमी 🤫 १।३८ बजेतक

षष्ठी " २।३९ बजेतक

सप्तमी " ३।१५ बजेतक

अष्टमी 😗 ३ ।१८ बजेतक |

नवमी " २।५१ बजेतक

दशमी 🗥 १ ।५५ बजेतक

एकादशी " १२।३४ बजेतक

त्रयोदशी '' ८।५१ बजेतक

चतुर्दशी सायं ६। ३८ बजेतक

अमावस्या दिनमें ४।१४ बजेतक

प्रतिपदा दिनमें १।४७ बजेतक

द्वितीया <table-cell-rows> ११ । २१ बजेतक

चतुर्थी प्रात: ६ ।५० बजेतक

षष्ठी रात्रिमें ३ ।१७ बजेतक

द्वादशी " ३।६ बजेतक

त्रयोदशी रात्रिशेष ४।४३ बजेतक

चतुर्दशी प्रात: ६ । ३८ बजेतक

पूर्णिमा दिनमें ९।३ बजेतक

चतुर्दशी अहोरात्र

सप्तमी "२।२ बजेतक

तृतीया 😗 ९।१ बजेतक

द्वादशी '' १०। ५२ बजेतक 🛮

अनुराधा ११९।५९ बजेतक

ज्येष्ठा "१०।४ बजेतक मुल 🕠 १०। ३८ बजेतक

उ०षा० 11१।१७ बजेतक

श्रवण 🗤 ३। १७ बजेतक

धनिष्ठा सायं ५ । ३७ बजेतक

शतभिषा रात्रिमें ८।१० बजेतक

पु०भा० ग १०।४७ बजेतक

शनि रवि

दशमी " १।८ बजेतक एकादशी "१।५४ बजेतक सोम

पू०षा० 🗤 ११। ४४ बजेतक

मंगल

बुध

गुरु

शुक्र

शनि

9 ,,

,,

नवमी " १२ ।५५ बजेतक

अष्टमी 🌝 १।१३ बजेतक शुक्र

प्रदोषव्रत, कुम्भराशि रात्रिशेष ४। २६ बजेसे, पंचकारम्भ रात्रिशेष ४। २६ बजे। ११ १२ अनन्तचतुर्दशीव्रत । भद्रा प्रातः ६ । ३८ बजेसे रात्रिमें ७ । ५० बजेतक, **व्रत-पूर्णिमा ।** १३ पूर्णिमा, महालयारम्भ, प्रतिपदाश्राद्ध, मीनराशि दिनमें ४।९ बजेसे। १४

कृपानुभूति गोमाता और हनुमान्जीकी भक्तिका सुफल आवेदन और राशि हेड ऑफिस भेजी। जिसके कारण (8) में पंजाब नेशनल बैंकका रिटायर्ड अधिकारी हूँ। हेड ऑफिसने उसका पेंशनका आवेदन निरस्त कर कल्याण पत्रिका मैं किशोरावस्थासे पढता आ रहा हैं। दिया। श्रीकड्दासने यूनियनके द्वारा प्रयास किया कि उसे यह घटना करीब २६ वर्ष पूर्वकी है। हमारे बैंककी पेंशन मिलनेका आवेदन स्वीकृत हो; क्योंकि इसमें बसफाटक ग्रामीण शाखामें श्रीकडुदास राणे दफ्तरीके उसकी कोई गलती नहीं है, किंतु बैंक मैनेजमेन्ट नहीं पदपर था। कडुदास कुर्सीपर बैठा हुआ था, उसके ठीक माना। तब कोर्टमें यूनियनने केस दर्ज करवाया। काफी ऊपर सीलिंग फैन चल रहा था, मैंने उससे कहा कि समय बाद कोर्टने उसके पक्षमें निर्णय दिया, किंतू बैंक पोस्ट ऑफिस जाकर अपने बैंककी डाक ले आओ। वह मैनेजमेन्टने फिर भी उसे पेंशन देना स्वीकार नहीं किया। जैसे-ही उठकर फाटकके बाहर हुआ कि सीलिंग फैन इसके बाद यूनियन हाईकोर्टमें केस ले गयी। इस बीच

भारतीय स्टेट बैंकको छोडकर शेष बैंकोंमें करीब २० वर्ष पूर्व पेंशन नहीं मिलती थी। सन् १९९४-९५ ई० के करीब कर्मचारी यूनियनकी माँगपर बैंकने यह सरक्युलर निकाला कि जो कर्मचारी रिटायरमेन्टके बाद पेंशन लेना चाहें, वे ऐसा आवेदन लिखकर दें तथा जो पी॰एफ॰ लेना चाहें, वे वैसा लिखकर दें।

धड़ाम-से उसी कुर्सीके ऊपर गिर पड़ा। प्रभुकृपासे

(२)

कड्दाससे ही सम्बन्धित एक अन्य घटना है,

उसकी जान बच गयी।

श्रीकड्दासने पेंशनके बजाय पी०एफ० लेनेको स्वीकृतिपत्र लिखकर दे दिया; क्योंकि उसे यह नहीं मालूम

था कि पेंशन लेनेमें बहुत फायदा है। अत: जब वह रिटायर हुआ तो उसे उसकी पी॰एफ॰की जमा राशि और बैंकद्वारा उतनी ही जमा की गयी राशि ब्याजसहित प्राप्त हो गयी। उसके रिटायरमेन्टके बाद कर्मचारी यूनियनकी

माँगपर बैंकने पुन: विकल्प दिया कि जो रिटायर्ड कर्मचारी पी०एफ० के बदले पेंशन लेना चाहें, वे ऐसा आवेदन लिखकर दें तथा उन्हें जो पी०एफ०की राशि बैंककी ओरसे मिली है, वह वापस जमा करवा दें।

कडुदासने शाखा जाकर पेंशनके लिये आवेदन दिया

और प्राप्त पी०एफ० की राशि जमा करवा दी, किंतु बैंक

शाखा प्रबन्धकने निर्धारित अन्तिम दिनांकके बाद उसका

मासिक पेंशन मिल रही है। (२) उसे अप्रत्याशित रूपसे बगैर ज्यादा मेहनत किये ४,६०० रुपये मासिककी अन्य आय भी होने लगी, जिससे अब वह बहुत प्रसन्न है। गौ-माता चलता-फिरता प्रत्यक्ष तीर्थ है, जिसमें तैंतीस करोड़ देवताओंका वास माना गया है तथा

काफी समय निकल गया और कडुदास काफी परेशान

रहने लगा। वह मेरे पास सलाह लेने आया तो मैं उसे

एक ब्राह्मण ज्योतिषीके पास ले गया, किंतु कडुदासको

अपनी सही जन्मतिथि और समय ज्ञात नहीं था। अत:

ज्योतिषीने उसके प्रश्न पूछनेके अनुसार उसे सलाह दी

कि तुम प्रत्येक मंगलवारको गौमाताको घास खिलाया

करो तथा मैंने उसे सलाह दी कि तुम प्रतिदिन

मन्दिर जाकर रोज हनुमानचालीसाके ग्यारह पाठ करने

लगा। करीब एक वर्ष बाद इसका सुपरिणाम यह हुआ कि

(१) हाईकोर्टने उसके पक्षमें निर्णय दिया और बैंक प्रबन्धकने

अपना अडियल रवैया छोडकर उसे उसकी रिटायरमेन्टकी

तारीखसे पेंशनका एरियर दिया और अब उसे नियमित

वह तदनुसार गौ-ग्रास देने लगा तथा हनुमान्जीके

हनुमानचालीसाके ग्यारह पाठ किया करो।

हनुमान्जी अष्ट सिद्धि और नौ निधिके दाता हैं। अत: मैंने कडुदासको पुन: सलाह दी कि यह सब इनकी कृपाका सुपरिणाम है, अत: तुम गौ-ग्रास देना और हनुमानचालीसाका ग्यारह पाठ करना चालू रखना और

वह ऐसा ही कर रहा है।—सुरेशचन्द्र महाजन

पढो, समझो और करो संख्या ८ ] ४७ पढ़ो, समझो और करो और उसमें जो-जो भी सामान, गहने आदि हों, उनके (8) गरीबके धनका रक्षक—ईश्वर नाम तौलसहित सूची बनाकर पंचनामा बनाना और बात वर्ष १९८४-८५ की है, जब मैं भारतीय स्टेट सूचीपर पाँच व्यक्तियोंके हस्ताक्षर लेकर पंचनामा बैंककी तत्कालीन एम०ए०सी०टी० (अब मेनिट) कॉलेज बनाना। इसमें कम-से-कम एक व्यक्ति बैंकसे बाहरका भोपाल शाखामें शाखा प्रबन्धकके पदपर कार्यरत था। भी होना चाहिये, ताकि किसीको शक-शुबहाकी गुंजाइश एक दिन कॉलेजके एक प्रोफेसर मेरे पास आये न रहे। अतः इस हेतु कॉलेजके एक प्रोफेसर श्रीसक्सेनाको और लॉकरकी गहराई पूछने लगे। अन्दाजन मैंने उन्हें बुलाकर समस्त सामान (गहनों)-की लिस्ट बनायी गयी। फिर उन्हें सीलकर शाखा प्रबन्धक एवं हेड गहराई १८ इंच बता दी। वे कहने लगे कि मुझे लॉकरकी वास्तविक गहराई बतायें; क्योंकि मुझे उसमें कैशियरकी ज्वाइण्ट कस्टडीमें रखा गया। कुछ Drawings (ड्राइंग्स) रखना है। अब समस्या इसके पश्चात् पूरा प्रकरण आंचलिक कार्यालय खड़ी हुई कि कोई खाली पड़ा लॉकर खोलो और भोपालको सूचित किया गया। यह भी सूचित कर दिया उसकी नाप लो। इतनेमें मुझे याद आया कि दो लॉकर गया कि टूटे हुए लॉकरके आस-पास ऊपर-नीचेके सेफमें-से एक लॉकर टूटा पड़ा है, अत: खाली लॉकर लॉकरवालोंसे जानकारी ली जा रही है कि लॉकरमें खोलकर देखनेकी परेशानीसे बचे। मैंने बैंकके वॉचमैन सामान बराबर है? ताकि यह पता लग सके कि यह श्री शाहीको एक रूलर लानेहेतु कहा, श्रीशाही रूलर थैली कौन-से लॉकर होल्डरकी है। लेने बैंक हालमें चले गये। प्रोफेसर साहब मेरी टेबलके आसपासके सभी लॉकर होल्डर्सको मौखिक पास बैठे थे। मेरी शुरूसे यह आदत रही है कि किसी सूचना देकर बैंकमें बुलवाया गया। उन्हें अपना समाान भी ग्राहकको ज्यादा देर अपने पास बैठाकर नहीं रखता। चेक करनेको कहा गया। सबने कहा कि उनका सामान सही है। इसमें करीब एक माह लग गया। रूलर आनेमें देर हो रही थी। इसी बीच मेरी सेफके ऊपर एक बड़ी फाइल वीकली एब्स्ट्रेक्टकी रखी इस प्रक्रियामें टूटे लॉकरके ऊपरवाले लॉकरकी धारक दिखायी दी। उस फाइलको उठाया, गोल घुमाया और श्रीमती रामकलीबाई अथवा रामकन्याबाई तीन-चार बार याद दिलानेपर भी लॉकर चेक करने नहीं आयीं। टूटे लॉकरमें डाल दिया। फाइल बीचमें ही रुक गयी। किंतु मैंने प्रोफसर साहबको कह दिया कि लॉकरकी कारण कि वह महिला एम०ए०सी०टी० स्टाफके क्वार्टर्समें बर्तन माँजने तथा सफाई आदिका काम गहराई १८ इंच है। वे चले गये। अब वाचमैन श्रीशाही रूलर लेकर आये तो रूलर टूटे लॉकरमें डाला। रूलर करती थी। अत: बार-बार बोलनेपर एक दिन वह भी तीन-चौथाई करीब जाकर रुक गया और अन्दर महिला भी आयी। मैंने उससे पूछा-लॉकर कबसे रूलर लगनेसे घुँघरू-जैसी आवाज आयी तो मेरा माथा नहीं खोला है? उसने कहा-एक-डेढ़ सालसे नहीं खोला। मैंने कहा कि ६-८ महीनोंमें आकर अपना ठनका। किसीसे कुछ न बोल वाचमैनको बैंकद्वारा प्रदत्त लाकर चेक कर लेना चाहिये तो उस महिलाने भी टार्च लानेको कहा। टार्च आनेपर लॉकरमें टार्चकी लाइट डालकर देखा तो एक नीले रंगकी थैली पोटलीकी हामी भरी। तब उसे अपना लॉकर चेक करनेको शक्लमें रखी हुई दिखायी दी। अब समझमें आया कि कहा। मैं अपनी मास्टर-की लगाकर अपनी सीटपर फाइल और रूलर बीचमें ही क्यों अटक गये थे। अब आकर बैठ गया और जो बैंक कर्मचारी उस महिलासे समस्या यह थी कि उस थैलीको निकालनेसे पहले पाँच काफी समयसे परिचित था, उनको अपने पास बुलाकर व्यक्ति एकत्रितकर उनके सामने थैली लॉकरसे निकालना बैठा लिया। महिलाने जैसे ही लॉकर खोला, उसने

भाग ९३ \*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\* रोना-चिल्लाना चालू कर दिया—'मैं मर गयी रे, मैं तरफ गया नहीं और गहने सुरक्षित पड़े रहे। इससे तो लुट गयी रे' आदि तब उस परिचित कर्मचारीको बैंककी भी साख बढी और हम स्टॉफके सदस्योंने भी लॉकर-रूममें भेजकर महिलासे लॉकर बन्द करवाकर ईश्वरका धन्यवाद माना कि गरीबका धन उसके सही उसे अपने पास बुलवा लिया और उससे पूछा कि मालिकतक पहुँच गया। अतः यह कहा जा सकता है तुम्हारे गहनोंमें क्या-क्या है, तुम्हें याद है? तो उस कि गरीबके धनका रक्षक ईश्वर होता है। अनपढ़ महिलाने (जिसकी एक आँखमें फूला था, —रवीन्द्र व्यास जिससे साफ दिखायी भी नहीं पड़ता था) एक-एक (२) सच्चे मनकी पुकार गहनेका नाम चाँदी-सोना धातु आदिका बताया जो गिनतीमें करीब १२-१३ गहने थे, जिसमें सोनेका यह घटना आजसे लगभग ३५ वर्ष पूर्वकी है। वजन करीब २०-२५ तोले और चाँदीका वजन एक-हमारा गाँव चाँदनी उत्तरप्रदेशमें बुन्देलखण्डके जिला से-डेढ़ किलो होगा, सभी व्यवस्थित बता दिये। जालौनकी तहसील कौंचके दक्षिण दिशामें स्थित है। यहाँ यह स्पष्ट कर दूँ कि महिला रीवा, मध्यप्रदेशकी जालौन जिला दिल्लीपति महाराज पृथ्वीराज चौहान रहनेवाली थी और एकदम अनपढ़ तथा विधवा थी। और महोबाके वीर चन्देल राजा परमारके बीच (वैरागण) वह काफी समयसे भोपालमें रहते हुए मजदूरीकर युद्धके लिये जाना जाता है, जहाँ आल्हा-ऊदलकी अपना पेट पाल रही थी। वीर-गाथाएँ आज भी सुर-तालमें गायी जाती हैं। अब मेरा अगला प्रश्न था कि ये गहने तुमने किसी आषाढ़ मासका उत्तरार्ध चल रहा था आसमानमें दुकानदारसे खरीदे होंगे या सुनारसे बनवाये होंगे तो बादलोंका नामोनिशान दूर-दूरतक दिखायी नहीं दे रहा उनके कोई बिल या रसीद तुम्हारे पास हैं? उसने था। अतः सूखा पड़ना निश्चित हो रहा था। हम सब कहा—देखूँगी। मैंने उसे आश्वासन दिया कि तुम्हारे ग्रामवासी सुखेकी भयावहताकी कल्पनामात्रसे चिन्तित गहने बैंकमें सुरक्षित हैं। तुम इन गहनोंकी बिल-रसीद थे। एक दिन हमारे रिश्तेमें चाचा लगनेवाले एक लाकर दे दो। एक महीनेमें तुम्हारा सामान मिल जायगा। सम्भ्रान्त सज्जनने पानी बरसानेके लिये २४ घंटेके बडे आश्चर्यके साथ कहना पडता है कि तीन-चार अखण्ड कीर्तनके आयोजनका प्रस्ताव रखा। इसके लिये दिनमें ही उस महिलाने सभी १२-१३ गहनोंके बिल-मैं और लगभग सभी ग्रामवासी सहमत हो गये और रसीदें रीवा ज्वेलर्सकी लाकर मुझे सौंप दी। आज भी गाँवके प्राचीन रामजानकी मन्दिरमें 'हरे राम हरे कृष्ण' हम पढ़े-लिखे लोग बिल-रसीद आदि कोई सामान की मधुर ध्विन सुनायी देने लगी। प्रभुकुपासे गाँवके सभी लोगोंने इस पावन-कार्यमें सच्चे मनसे भाग लिया, खरीदते वक्त नहीं लेते और लेते हैं तो इधर-उधर फेंक देते हैं, जो जरूरत पड़नेपर मिलते नहीं। जिससे यह कीर्तन-ध्विन चौबीस घंटेकी जगह १२ अब मेरा काम काफी आसान हो गया था। दिनतक सतत चलती रही, लेकिन बादलोंका नामोनिशान गहनोंका असली हकदार प्रमाणके सहित मिल गया था। भी नहीं था। अत: कार्यक्रमको समाप्त करनेका निर्णय उस आधारपर आंचलिक कार्यालय, भोपालको पत्र लिया गया। समापन कार्यक्रममें नगरफेरीका आयोजन लिखकर स्वीकृति माँगी। आवश्यक दस्तावेज तैयारकर किया गया। इस नगरफेरीमें गाँवके लगभग सभी बूढ़े-स्वीकृतिहेतु भेजे गये। शीघ्र स्वीकृति प्राप्त हो गयी। बच्चों, बहू-बेटियोंने जाति-पॉॅंति भुलाकर एकमन एकरस उस गरीब, अनपढ महिलाके गहने टूटे लॉकरमें असुरक्षित होकर जब इस ध्वनिसे ब्रह्माण्डको गुंजायमान किया तो एक वर्षसे अधिक समयतक पडे रहे, किंतु उसका भाग्य इस भावका ऐसा प्रभाव हुआ कि नगरके आखिरी 

पढो, समझो और करो संख्या ८ ] की जा रही थी तो न जाने कहाँसे आसमानमें मेघोंका उनकी कृपाका चमत्कार है कि सर्पविषसे मूर्च्छित पदार्पण हुआ और देखते-ही-देखते वे सघन होकर व्यक्तिकी भी चेतना लौट आती है और वह स्वयं मूसलाधार वर्षा करने लगे। उस वर्षाने सभी भक्तोंको चलकर अपने घर वापस चला जाता है। निर्मल जलसे सराबोर कर दिया एवं भारी बारिशसे —श्रीरंजन सूरिदेव आसपासके सर-सरोवर भर गये। इस घटनाके बारेमें (8) मुझे इतना ही कहना है कि भगवान्ने हम गाँववालोंके कुछ अनुभूत प्रयोग अन्तर्मनकी पुकारका फल देकर मनोकामना पूर्ण की, (१) फोड़ा-फुंसी-कहीं कैसा भी फोड़ा-फुंसी हो, इस प्रयोगसे या तो वह बैठ जायगा या पककर ऐसा मेरा विश्वास है।—भानुप्रकाश निरंजन ( वकील साहब ) फूट जायगा, घाव जल्दी भरकर साफ हो जायगा। (3) प्रयोग—पाँच तोले करंजके तेलमें एक मासा सर्पविषहन्ता भयहरण बाबा मैं सन्ताल परगना (प्रमण्डल)-के दुमका मण्डलमें डलीका असली कपूर पीसकर मिला दे और हिलाकर अवस्थित धौनी गाँवका मूल निवासी हूँ। प्रसिद्ध शिवधाम शीशीमें भरकर रख दे। फोड़े-फुंसीपर अँगुलीसे लगा दे वासुकिनाथसे यह गाँव लगभग दस किलोमीटर दूर और रूईपर मामूली तेल लगाकर पट्टी बाँध दे। सुबह-पश्चिम दिशामें है। यहाँ भी एक शिवधाम है-नाम है शाम दोनों समय गरम जलसे धोना चाहिये। शुम्भेश्वरनाथधाम। कहते हैं, इस शिवधाममें स्थित (२) दमा (श्वास)—(क) खानेका नमक शिवलिंगको शुम्भ नामक दैत्यने स्थापित किया था, ऐसी सुनारकी कुठालीमें पकाकर रख ले और उसमेंसे मकईके मान्यता है। इस शिवमन्दिरमें जो शिवलिंग है, वह दानेके बराबर बिना कत्थे-चूनेके पानमें डालकर प्रतिदिन बीचसे फटा हुआ है। कहते हैं, पुराकालमें सन्ताल-दिनमें तीन बार खा ले। रातको सोते समय अवश्य खाये। विद्रोहके अवसरपर किसी विद्रोही सन्तालने शिवलिंगपर (ख) रातको सोते समय आधी सुपारीके बराबर कुदालसे प्रहार कर दिया था। इसीसे वह फट गया। पीसा हुआ काला नमक जलके साथ खानेसे भी दमाके रोगमें लाभ होता है। इसी गाँवसे उत्तर लगभग दो-तीन किलोमीटर दूर 'ककनी' नामका एक गाँव है। इस गाँवमें एक ब्राह्मण (३) कानका दर्द-गुलाबका असली इत्र दो परिवारके घरमें भयहरण बाबाकी पिण्डी है। इस पिण्डीरूपी बूँद कानमें डालकर हिला देना चाहिये। बाबाकी विशेषता है कि इसपर डाला गया जल, जिसे लोग (४) कानमें फुंसी-बब्रुलके पके हुए दो-चार 'नीर' कहते हैं, पीनेसे सर्पविषका निवारण हो जाता है। फूल लाकर उन्हें कानके अन्दर गिराना चाहिये और उसका बुरादा फुंसीपर लगा देना चाहिये। एक बार मेरे पिताजी विषधर सर्पके फुफकारके शिकार हो गये। उन्हें मिचली आने लगी और सिर —चिरंजीलाल जाजोदिया खूनी बवासीर—रसौत एक तोला और कलमी चकराने लगा। पिताजीको तत्क्षण मेरे बड़े पिताजी, जो सोरा एक तोला-दोनोंको पानीमें खूब महीन पीसकर ज्योतिष तथा धर्मशास्त्रके प्रकाण्ड पण्डित थे, अपने साथ लेकर ककनी गाँवमें भयहरण बाबाके मण्डपमें आठ-आठ आनेभरकी गोली बना ले। एक गोली पहुँच गये। वहाँ उन बाबाके पुजारीने पिताजीको प्रात:काल और एक सन्ध्याको ठण्डे जलके साथ खिला भयहरण बाबा का 'नीर' पिलाया। नीरके प्रभावसे मेरे दे। यह दो दिनोंकी दवा है। इसीसे खून बन्द हो जायगा। पिताजी स्वस्थ हो गये और अपने घर लौट आये। न हो तो, दो दिन इसी प्रकार और दे दे। गुड़, लाल भयहरण बाबाके नीरका प्रभाव या प्रताप अथवा मिर्च, खटाई, तेल कतई न खाये। - बंसीधर अग्रवाल



मनन करने योग्य बड़ोंकी हँसी उड़ानेका दुष्परिणाम एक बारकी बात है, कैलासके शिव-सदनमें देवता बोले—'प्रभो! आप चन्द्रमापर अनुग्रह करें, ब्रह्माजी शिवजीके पास बैठे थे। उसी समय वहाँ देवर्षि हमारी यही कामना है।' गणेशजीने कहा—'देवताओ! मैं अपना वचन नारद पहुँचे। उनके पास एक अतिशय सुन्दर फल था। जो देवर्षिने उमानाथके कर-कमलोंमें अर्पित कर दिया। मिथ्या कैसे कर दूँ? पर शरणागतका त्याग भी सम्भव फलको पिताके हाथमें देखकर गणेश और कुमार नहीं।' अत: तुम लोग मेरी बात सुनो-दोनों बालक उसे आग्रहपूर्वक माँगने लगे। तब शिवने 'जो जानकर या अनजानमें ही भाद्र-शुक्ल-ब्रह्माजीने पूछा—'ब्रह्मन्! फल एक ही है और इसे चतुर्थीको चन्द्रका दर्शन करेगा, वह अभिशप्त होगा। गणेश एवं कुमार दोनों चाहते हैं; आप बतायें, इसे उसे अधिक दु:ख उठाना पड़ेगा।' किसे दुँ?' परमप्रभु द्विरदाननके वचन सुन देवगण अत्यन्त चतुर्मुखने उत्तर दिया—'प्रभो! छोटे होनेके कारण मुदित हुए। उन्होंने पुन: प्रभु-चरणोंमें प्रणाम किया। तदनन्तर वे चन्द्रमाके पास पहुँचे और उनसे कहा— इस एकमात्र फलके अधिकारी तो षडानन ही हैं।'

गंगाधरने फल कुमारको दे दिया। किंतु पार्वतीनन्दन 'चन्द्र! गजमुखपर हँसकर तुमने अपनी मूढताका ही परिचय दिया है। तुमने परम प्रभुका अपराध किया और गणेश सृष्टिकर्ता ब्रह्मापर कुपित हो गये। लोकपितामहने अपने भवन पहुँचकर सृष्टि-रचनाका त्रैलोक्य संकटग्रस्त हो गया। हम लोगोंने त्रैलोक्यनायक परब्रह्मस्वरूप सर्वगुरु गजानन प्रभुको बड़े यत्नसे सन्तुष्ट प्रयत्न किया तो गजवक्त्रने अद्भृत विघ्न उत्पन्न कर दिया। वे अत्यन्त उग्ररूपमें विधाताके सम्मुख प्रकट किया। इस कारण उन दयामयने तुम्हें वर्षमें केवल एक हुए। विघ्नेश्वरके भयानकतम स्वरूपको देखकर विधाता दिन भाद्र-शुक्ल-चतुर्थीको अदर्शनीय रहनेका वचन

गजाननकी विकट मूर्ति एवं ब्रह्माका भय और

कम्प देखकर चन्द्रदेव अपने गणोंके साथ हँस पड़े। चन्द्रमाको हँसते देख गजमुखको बड़ा क्रोध आया। उन्होंने चन्द्रदेवको तुरंत शाप दे दिया—'चन्द्र! अब तुम किसीके देखनेयोग्य नहीं रह जाओगे और यदि किसीने तुम्हें देख लिया तो वह पापका भागी होगा। अब तो चन्द्रमा श्रीहत, मलिन एवं दीन होकर अत्यन्त दु:खित हो गये।

भयभीत होकर काँपने लगे।

उसे अवश्य पूर्ण करूँगा।'

सुधाकरके अदर्शनसे देवगण भी दु:खित हुए। अग्नि और इन्द्र आदि देवगण देवदेव गजाननके समीप

पहुँचकर उनकी भक्तिपूर्वक स्तृति करने लगे। देवताओंके स्तवनसे प्रसन्न होकर गजमुखने कहा—

सुधाकर शुद्ध हृदयसे परम प्रभु गजमुखकी शरण हुए। वे पुण्यतोया जाह्नवीके दक्षिण तटपर गजाननका ध्यान करते हुए उनके एकाक्षरीमन्त्रका जप करने लगे। चन्द्रदेवने गणेशको सन्तुष्ट करनेके लिये बारह वर्षतक कठोर तप किया। इससे आदिदेव गजानन प्रसन्न हुए और उन परम प्रभु गजाननके वर-प्रभावसे सुधांशु पूर्ववत् तेजस्वी, सुन्दर एवं वन्द्य हो गये। इस तरह यह पौराणिक घटना यह सन्देश देती है

यश प्राप्त करो।'

देकर अपना शाप अत्यन्त सीमित कर दिया। तुम भी उन

करुणामयकी शरण लो और उनकी कृपासे शुद्ध होकर

उपदेश किया और फिर देवगण वहाँसे चले गये।

देवेन्द्रने सुधांशुको गजाननके एकाक्षरी मन्त्रका

'देवताओ! मैं तुम्हारी स्तुतिसे सन्तुष्ट हूँ। वर माँगो, मैं कि अपनेसे बड़ोंका उपहास करना अमंगलकारी होता है। [गणेशपुराण, उपासनाखण्ड]